



इग्नू
जन-जन का
विश्वविद्यालय

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

BSKC-102

संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक विश्लेषण



“शिक्षा मानव को बन्धनों से मुक्त करती है और आज के युग में तो यह लोकतंत्र की भावना का आधार भी है। जन्म तथा अन्य कारणों से उत्पन्न जाति एवं वर्तमान विषमताओं को दूर करते हुए मनुष्य को इन सबसे ऊपर उठाती है।”

— इन्दिरा गांधी



ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

“Education is a liberating force, and in our age it is also a democratising force, cutting across the barriers of caste and class, smoothing out inequalities imposed by birth and other circumstances.”

— Indira Gandhi



इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

BSKC-102
संस्कृत साहित्य का
आलोचनात्मक विश्लेषण

संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक विश्लेषण

खण्ड 1	वैदिक साहित्य	7
खण्ड 2	रामायण और महाभारत	81
खण्ड 3	पुराण	197
खण्ड 4	संस्कृत व्याकरण और भारतीय दर्शन का इतिहास	267

पाठ्यक्रम विश्वविज्ञान समिति

प्रो. रमेश कुमार पाण्डेय
कुलपति श्री लाल बहादुर शास्त्री
राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली

प्रो. आनन्द कुमार श्रीवास्तव
अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, कला संकाय
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रो. रमाकान्त पाण्डेय
निदेशक, मुक्त स्वाध्याय पीठ
राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली

डॉ. रंजन कुमार त्रिपाठी
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

निदेशक मानविकी विद्यापीठ
प्रो. मालती माथुर
इग्नू मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम संयोजक एवं सम्पादक
प्रो. (डॉ.) कौशल पंवार
संस्कृत संकाय, मानविक विद्यापीठ
इग्नू नई दिल्ली

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

पाठ लेखक

डॉ. करुणा आर्य संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
डॉ. पुष्पा संस्कृत विभाग मानविकी विद्यापीठ इग्नू
डॉ. प्रदीप कुमार संस्कृत विभाग, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी
डॉ. मोहिनी आर्य संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
डॉ. उमेश शुक्ला संस्कृत विभाग,
संस्कृत महाविद्यालय, भीलवाड़ा, राजस्थान

इकाई संख्या

खण्ड 1 (इकाई 1,2,3,4,6)
खण्ड 1 (इकाई 5)
खण्ड 2 (इकाई 7,8,9,10,11)
खण्ड 3 (इकाई 12,13,14,15)
खण्ड 4 (इकाई 16,17,18,19,20)

सचिवालयीय सहयोग

श्री अनिल कुमार, मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

सामग्री निर्माण

श्री तिलक राज
सहायक कुल सचिव
सा.नि. एवं वि. प्र. इग्नू, नई दिल्ली

मार्च, 2022

©इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2022

ISBN- 978-93-5568-142-3

सर्वाधिकार सुरक्षित, इस कार्य का कोई भी अंश इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति
लिए बिना मिनियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

मानविकी विद्यापीठ एवं इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के बारे में विश्वविद्यालय
कार्यालय मैदान गढ़ी नई दिल्ली से अधिक जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से कुलसचिव, सामग्री निर्माण एवं वितरण प्रभाग, इग्नू द्वारा
मुद्रित एवं प्रकाशित

लेजर टाइप सेटिंग : टेसा मीडिया एण्ड कंप्यूटर, C-206, A.F.Enclave-II, नई दिल्ली

मुद्रक एस जी प्रिन्ट पैक्स प्रा. लि., एफ 478, सेक्टर 63, नोएडा . 201301 यू. पी.

विषय सूची

खण्ड 1	वैदिक साहित्य	7
इकाई 1	वैदिक साहित्य का संक्षिप्त परिचय	9
इकाई 2	संहिता परिचय	22
इकाई 3	ब्राह्मण परिचय तथा प्रमुख ब्राह्मण	37
इकाई 4	आरण्यक परिचय तथा प्रमुख आरण्यक	46
इकाई 5	उपनिषद् परिचय तथा प्रमुख उपनिषद्	56
इकाई 6	सूत्र साहित्य अथवा वेदांग परिचय	70
खण्ड 2	रामायण और महाभारत	81
इकाई 7	रामायण परिचय व कालनिर्धारण	83
इकाई 8	रामायणकालीन समाज और संस्कृति	105
इकाई 9	महाभारत का विकासक्रम व कालनिर्धारण	129
इकाई 10	महाभारतकालीन समाज और संस्कृति	154
इकाई 11	रामायण और महाभारत पौर्वापर्य	176
खण्ड 3	पुराण	197
इकाई 12	पुराण की परिभाषा, लक्षण और संख्या	199
इकाई 13	पुराण, महापुराण में अन्तर और विविध पुराण	211
इकाई 14	पुराणों की विषयवस्तु एवं विशेषताएं	220
इकाई 15	पुराणों का ऐतिहासिक महत्त्व	231
इकाई 16	पुराणों का सामाजिक तथा सांस्कृतिक महत्त्व	243
इकाई 17	श्रीमद्भागवत्, अग्नि, विष्णु, गरुड़ एवं मत्स्य पुराणों का सामान्य परिचय	255
खण्ड 4	संस्कृत व्याकरण और भारतीय दर्शन का इतिहास	267
इकाई 18	संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास	269
इकाई 19	भारतीय दर्शन का इतिहास	284
इकाई 20	संस्कृत व्याकरण और भारतीय दर्शन की जीवन में उपयोगिता	302

पाठ्यक्रम परिचय

बी.ए. आनर्स संस्कृत पाठ्यक्रम के अन्तर्गत आप 'संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक विश्लेषण' नामक पाठ्यक्रम का अध्ययन करने जा रहे हैं। संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक विश्लेषण का यह पाठ्यक्रम 4 खण्डों में विभाजित है। यह पाठ्यक्रम 06 क्रेडिट का है जिसमें 20 इकाइयाँ हैं। इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य आपको संस्कृत साहित्य, वैदिक वाङ्मय और भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता से परिचित कराना है जिसके आधार पर आप संस्कृत साहित्य, भारतीय सभ्यता और संस्कृति को समझने की क्षमता का विकास कर सकें।

प्रथम खण्ड में आप वैदिक साहित्य का अध्ययन करेंगे। सामान्यतया किसी विषय का अध्ययन प्रारम्भ करते हुए उसके काल का प्रथम दृष्टया क्रमिक विकास और इतिहास से परिचित होना आवश्यक होता है। इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर इस पाठ्यक्रम के प्रथम खण्ड की 06 इकाइयों में वैदिक साहित्य का संक्षिप्त परिचय, संहिता परिचय, वैदिक ब्राह्मण तथा प्रमुख ब्राह्मण ग्रंथ व आरण्यकों का परिचय तथा प्रमुख अरण्यक, उपनिषद् परिचय तथा प्रमुख उपनिषद्, सूत्र साहित्य अथवा वेदांग का परिचय दिया गया है।

दूसरा खण्ड रामायण और महाभारत से सम्बन्धित है। इस खण्ड में 05 इकाइयाँ हैं, जिनके अन्तर्गत आप रामायण परिचय व उसका काल निर्धारण, रामायणकालीन समाज और संस्कृति, महाभारत का विकास क्रम व काल निर्धारण तथा महाभारत कालीन समाज और संस्कृति एवं रामायण और महाभारत पौर्वापर्य का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

तीसरा खण्ड पुराणों से सम्बन्धित है। इस खण्ड की 06 इकाइयाँ के अन्तर्गत आप पुराणों की परिभाषा, लक्षण और संख्या, पुराण और महापुराण में अंतर तथा विविध पुराण, पुराणों की विषयवस्तु, विशेषताएँ, पुराणों का ऐतिहासिक महत्व, पुराणों का सामाजिक तथा सांस्कृतिक महत्व, श्रीमद्भागवत्, अग्नि, विष्णु, गरुड़ एवं मत्स्य पुराणों के सामान्य परिचय का अध्ययन करेंगे।

चतुर्थ खण्ड संस्कृत व्याकरण और भारतीय दर्शन के इतिहास से सम्बन्धित है। इस खण्ड में कुल 3 इकाइयाँ हैं जिनके अंतर्गत आप संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास, भारतीय दर्शन का इतिहास, संस्कृत व्याकरण और भारतीय दर्शन की जीवन में उपयोगिता का अध्ययन करेंगे। दर्शनशास्त्र का भारतीय एवं विश्व ज्ञान परम्परा में विशेष महत्व है। ज्ञान के माध्यम से आत्मोत्थान करने में दर्शनशास्त्र की विभिन्न परम्पराओं की महती भूमिका है। इस दृष्टि से इस पाठ्यक्रम में भारतीय दर्शन के इतिहास को सम्मिलित किया गया है।

आशा है कि BSKC 102 संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक विश्लेषण का यह पाठ्यक्रम आपको वैदिक साहित्य, रामायण एवं महाभारत, पुराण तथा संस्कृत व्याकरण और भारतीय दर्शन का इतिहास जानने व समझने में सहायक होगा।

अतः पाठ्यक्रम की अध्ययन सामग्री निम्न ढंग से प्रस्तुत की गई है—

वैदिक साहित्य	—	6 इकाइयाँ
रामायण और महाभारत	—	5 इकाइयाँ
पुराण	—	6 इकाइयाँ
संस्कृत व्याकरण और भारतीय दर्शन का इतिहास	—	3 इकाइयाँ
कुल		— 20 इकाइयाँ

शुभकामनाओं के साथ

खण्ड 1
वैदिक साहित्य

Pignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 1 वैदिक साहित्य का संक्षिप्त परिचय

इकाई की रूपरेखा

- 1.0 उद्देश्य
- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 वैदिक साहित्य का परिचय
- 1.3 वेदों का परिचय
- 1.4 वेदों का प्रतिपाद्य विषय
- 1.5 वेदों की रचना
- 1.6 वेदों का महत्व
- 1.7 सारांश
- 1.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 1.9 बोध प्रश्न/ अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप—

- वेदों से भली भांति परिचित हो जायेंगे।
- वेदों की रचना के विषय में जानेंगे।
- वेदों के प्रतिपाद्य विषय को अच्छे से समझ सकें।
- वैदिक साहित्य का विस्तार से अध्ययन करेंगे। वैदिक साहित्य के कौन – कौन से अङ्ग हैं वह भी आप विशदतया अङ्गीकार करेंगे।
- वैदिक साहित्य समाज के लिए कितना उपयोगी है यह भी आप जानेंगे।
- वेदों के महत्व को सुविस्तृत, सुवैज्ञानिक व परम्परागत मान्यताओं के आधार पर बताया जायेगा, जिससे आध्यात्मिक, आत्मिक शान्ति अक्षुण्ण रहे।

1.1 प्रस्तावना

इकाई संख्या 1— वैदिक साहित्य के अन्तर्गत आती है। इसके अन्दर वैदिक साहित्य का परिचय दिया गया है। वेदों की रचना इनके ऋषि, विषय और वेद नित्य हैं? वेद किसकी रचना हैं? इस विषय का अवबोधन कराया गया है। वेदों के अङ्ग और उपवेदों के विषय में भी प्रस्तुत इकाई में विश्लेषण किया गया है। वैदिक साहित्य समाज के लिए कितना उपयोगी है इसकी उपयोगिता पर प्रकाश डाला गया है।

वेद भारत धरा के ही नहीं अपितु अखिल विश्व के प्राचीनतम अक्षय कोष हैं, जो कि संसार की समस्त विद्याओं के मूल स्रोत हैं। भारतीय परम्परा के अनुसार वेद अपौरुषेय हैं जिनका आविर्भाव सृष्टि के आरम्भ में हुआ था। उस काल से ले कर आज तक वे मानव जीवन के कल्याणार्थ साधन बनकर उसे अनुप्राणित कर रहे हैं। वेदों में ज्ञान विज्ञान, धर्म दर्शन, सदाचार, संस्कृति, सामाजिक तथा राजनैतिक जीवन से सम्बन्धित सभी विषय उपलब्ध हैं। आचार्य मनु का तो स्पष्ट कहना है – ‘स सर्वोभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः अर्थात् वेद में समस्त विद्याएं, समस्त धर्म अर्थात् नियमों का प्रतिपादन किया गया है, जो सम्पूर्ण ज्ञान का कोष हैं। इसी प्रकार याज्ञवल्क्य स्मृति का वचन है—

न वेदशास्त्रादन्यस्तु किञ्चिच्छास्त्रं हि विद्यते ।

निःसृतं सर्वशास्त्रं तु वेदशास्त्रात्सनातनात् ।।

अर्थात् समस्त शास्त्रों का मूल वेद है। वैदिक साहित्य के अन्य जितने भी कल्प हैं वे सभी किसी न किसी रूप में वेद से जुड़े हैं। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष विषयक समस्त ग्रन्थ वेदांग के अन्तर्गत आते हैं। विज्ञान और दर्शन से सम्बन्धित ग्रन्थ न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, वेदान्त और मीमांसा वेद के उपाङ्ग हैं। आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद, अथर्ववेद वेदों के ही उपवेद हैं। समस्त उपनिषद् ईषोपनिषद् का विस्तृत रूप हैं। ब्राह्मणादि ग्रन्थ वेद के ही व्याख्या ग्रन्थ हैं। गृह्यादि श्रौत सूत्र वेद द्वारा निर्दिष्ट कर्मकाण्ड में सहायक ग्रन्थ हैं। वेद के अन्तर्गत एक भी ऐसा ज्ञान का विषय नहीं है जिसका ज्ञान मनुष्य के वैयक्तिक अथवा सामूहिक, ऐहिक अथवा पारलौकिक जीवन के लिए आवश्यक हो और वेद में न हो। यह भारत ऐसे महान वेदों की भूमि है।

वैदिक साहित्य दो भागों में विभक्त है मन्त्र और ब्राह्मण। ‘ऋच्यन्ते स्तूयन्ते देवा अनया इति ऋक्’ –जिसके द्वारा देवताओं की स्तुति की जाती है, वह ऋक्, ऋचा या मन्त्र कहलाता है। ऐसी ऋचाओं या मन्त्रों के समूह का नाम संहिताएं हैं। ये संहितायें ऋक् यजु, साम और अथर्व के नाम से जानी जाती हैं। इन संहिताओं का ही दूसरा नाम वेद है। जिसके अन्दर याज्ञिक देवताओं की स्तुति, प्रार्थना, दान, शान्ति – पाठ तथा शिव संकल्प आदि से सम्बन्धित मन्त्र हैं। इन संहिताओं का साहित्य निम्नरूप में उल्लिखित होता है—

ऋक् यजुः सामथर्वाख्यान वेदान् पूर्वादिभिर्मुखैः ।

शस्त्रमिज्यां स्तुतिस्तोमं प्रायश्चित्तं व्यधात् क्रमात् ।।

अर्थात् शास्त्र ही ऋक् का विषय है, जो मन्त्रों द्वारा उच्चारित तो होता है, किन्तु इसका गान नहीं किया जा सकता है। इन मन्त्रों का उच्चारण ‘होता’ नामक ऋत्विज् करता है। यजुष का विषय इज्या है जो यज्ञकर्म विषयक उपासना से युक्त है जिसका ऋत्विक् अध्वर्यु है। यजुर्वेद से ही यज्ञ के शरीर की निष्पत्ति होती है। साम का विषय है स्तुति, स्तोम अर्थात् स्तुति के लिए प्रयुजमान ऋक् समुदाय। जो उद्गाता द्वारा गाया जाता है यह स्तोम त्रिवृत् पञ्चदश, सप्तदश आदि अनेक प्रकार का होता है। अथर्ववेद का प्रतिपाद्य विषय प्रायश्चित्त है जिसके अन्तर्गत कर्म त्रुटि दिखलाना और प्रायश्चित्त का उपदेश करना ब्रह्मा नामक ऋत्विज् के कर्म हैं।

1.3 वेदों का परिचय

वेद शब्द विद् धातु में भाव अथवा करण में घञ् प्रत्यय जोड़कर निष्पन्न हुआ है, जिसका मूलतः अर्थ होता है ज्ञान किंतु सिद्धांत कौमुदी में विद्धातु का अर्थ चार प्रकार से प्राप्त होता है—

सत्तायां विद्याते ज्ञाने वेत्ति विन्ते विचारणे ।

विन्दते विन्दति प्राप्त श्यन्लुक्शनम्शेषिदं क्रमात् ।।

इस प्रकार विद् ज्ञाने, विद् विचारणे, विद् लृ लाभे तथा विद् सत्तायां अर्थात् जानना, विचार करना, प्राप्त करना तथा विद्यमान होना। उक्त सभी अर्थों के वाचक विद् धातु से वेद शब्द ही निष्पन्न होता है किंतु इसमें ज्ञानार्थ की ही प्रधानता है। स्वामी दयानंद सरस्वती के अनुसार भी उक्त चारों अर्थों के वाचक विद् धातु से वेद शब्द की निष्पत्ति होती है जिसके अनुसार सभी मनुष्य सत्यविद्या जानते हैं, प्राप्त करते हैं, विचार करते हैं तथा विद्वान् होते हैं अर्थात् विद्या की प्राप्ति के लिए जिसमें प्रवृत्त हुआ जाए वह वेद कहलाते हैं अर्थात् विदन्ति जानन्ति, विद्यते भवन्ति, विदन्ति अथवा, विदन्ते, लभन्ते, विदन्ति— विचारयन्ति सर्वे मनुष्याः सत्यविद्यां यैर्येषु वा तथा विद्वान्सश्च भवन्ति ते वेदाः ।

वेद शब्द की परिभाषा करते हुए आचार्य सायण ने अपने भाष्य में लिखा है अपौरुषेय वाक्यं वेदः अथवा इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोः अलौकिकमुपायं वेदयते स वेदः इस प्रकार अधिकांशतया वेद शब्द का प्रयोग ज्ञान के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है। कहीं—कहीं ज्ञान के अतिरिक्त अन्य अर्थों में भी प्राप्त होता है। जैसे—“मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्” अर्थात् मन्त्र और ब्राह्मण भाग को वेद कहते हैं। वेद शब्द का लक्ष्यार्थ रुढिगत अर्थ वह ज्ञान है जो नित्य शाश्वत एवं पुरातन है, जिसको प्राचीन भारतीय मनीषियों ने चिंतन एवं मनन के द्वारा समाधि अवस्था में अर्जित किया था। उसको ऋग्वेद संहिता में निम्नलिखित रूप में वर्णित किया गया है— वेद्यन्ते बोध्यन्ते प्रमाणैरनधिगतादृष्टादृष्टफलकारु । क्रियाकलाप एभिरिति वेदाः ।।

अर्थात् प्रत्यक्ष अनुमान आदि अन्य प्रमाणों से दृष्ट तथा अदृष्ट क्रियाकलाप जिनके द्वारा जाने जाते हैं। उन अतीन्द्रिय ज्ञान के बोधक ग्रंथों का नाम वेद है।

1.4 वेदों का प्रतिपाद्य विषय

ऋग्वेद

ऋग्वेद का वर्ण्य विषय ज्ञान—विज्ञान है। ऋग्वेद— जगत् में जितनी भी वस्तुएं हैं उन सब वस्तुओं में ज्ञान—विज्ञान से ओत—प्रोत या प्रकाशपुञ्ज से परिपूर्ण हैं। इसमें मुख्यरूप से विभिन्न देवों की स्तुति है। इन देवों से यश, विद्या, श्रीवृद्धि, आदि की प्रार्थनाएं की गई हैं। सृष्टि उत्पत्ति, मनोविज्ञान, आयुर्वेद, भाषाविज्ञान, ज्योतिष, गणित आदि की भी पर्याप्त सामग्री प्राप्त होती है। इस वेद में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षिक, नैतिक व्यवस्था एवं वैज्ञानिक तथ्यों का भी यथास्थान निरूपण हुआ है। काव्य और कलात्मकता की दृष्टि से भी अनेक सुन्दर प्रसंग प्राप्त होते हैं। नैतिक विषयों को स्पष्ट करने के लिए आख्यानों का भी आश्रय लिया है।

आचार शिक्षा, नीति शिक्षा, धर्म शिक्षा, तथा कर्तव्योपदेश आदि का वर्णन पदे—पदे प्राप्त होता है।

यजुर्वेद

यजुर्वेद कर्मकाण्ड का वेद है। इसमें विभिन्न यज्ञों की विधियाँ और उनमें पाठ्य मन्त्रों का संकलन है। यज्ञ करने वाले ऋत्विज् को अध्वर्यु कहते हैं ऋग्वेद में अध्वर्यु के विषय में कहा गया है कि वह यज्ञ का संयोजक और निष्पादक होता है। अतः वह यज्ञ का नेता (प्रमुख) होता है। यज्ञस्य मात्रा विनिमीत उ त्वः। (ऋ०10/71/11)। यास्क ने अध्वर्यु की व्याख्या में कहा है— अध्वरं युनक्ति अध्वरस्य नेता। (निरुक्त1/3) अर्थात् यज्ञ का संयोजक और यज्ञ का नेता। इस प्रकार यजुर्वेद कर्मकाण्ड का प्रमुख ग्रन्थ है।

यजुर्वेद की शुक्ल और कृष्ण दो शाखाएँ हैं और इन शाखाओं में विषयवस्तु लगभग एक जैसी ही है। इन शाखाओं के प्रातिशाख्य हैं। इनका विषय है दर्श पौर्णमास से सम्बन्धित याज्ञों का वर्णन। अग्निष्टोम और सोमयाज्ञों का वर्णन है। अग्निष्टोम ज्योतिष्टोम का परिष्कृत रूप है। ये याज्ञ प्रातः, मध्याह्न, और सायं तीन बार होते हैं। इन्हें प्रातः सवन, माध्याह्न सवन और सायं सवन के नाम से भी जाना जाता है।

यजुर्वेद में अग्निचयन और विविध प्रकार की वेदियों के निर्माण से सम्बन्धित मन्त्र हैं। रुद्र के विराट् रूप का भी वर्णन है। सभी प्रकार के याग तथा सार्वभौम आधिपत्य के लिए अश्वमेध यज्ञ का भी वर्णन है। जन्तुविज्ञान, पशु-पक्षी विज्ञान, मनोविज्ञान आध्यात्मिक स्वरूप और उपनिषदों का आधार यजुर्वेद को ही माना जाता है।

सामवेद

सामवेद में मुख्यरूप से उपासना विषय है। अग्नि और इन्द्र से सम्बद्ध मन्त्र हैं। इन देवों की स्तुति, प्रार्थना, उपासना है। और सोमयागों से सम्बद्ध मन्त्रों की संख्या ज्यादा है। यहां सोम शब्द न केवल सोमरस का ही बोधक है अपितु यह उपासना के लक्ष्य सोम्य गुणों का भी सूचक है। इन सौम्य गुणों की प्राप्ति के लिए सामगान किया जाता है। सोम शब्द परमात्मा की प्राप्ति का लक्ष्य है। इसके लिए सामगान है।

सामगान भक्तिभावना और श्रद्धा जागृत करने के लिए किया जाता है। सामवेद में दो आर्चिक हैं— 1. पूर्वार्चिक 2. उत्तरार्चिक । इन दोनों आर्चिकों में एक दूसरे की तारतम्यता से विषय प्रतिपादित है। पूर्वार्चिक में मन्त्र लय के साथ स्मरण करने होते हैं व उनका प्रयोग उत्तरार्चिक में किया जाता है। इन मन्त्रों का प्रयोग यज्ञ में सामगान के रूप में किया जाता है। इस वेद में शान्त, वीर आदि रसों में भी मन्त्र वर्णित हैं।

अथर्ववेद

अथर्ववेद के प्रतिपाद्य विषय हैं अतिथि सत्कार, दीर्घायुष्य प्राप्ति, ब्राह्मविद्या, कृत्या परिहार, दुःस्वप्नाशन, रोगनाशन, कृमिनाशन, राजा निर्वाचन, वृष्टि, पापमोचन, सर्पविषनाशन, ब्रह्मौदन, रुद्र, ब्रह्मचर्य सूक्त, पृथ्वी वर्णन, आध्यात्म वर्णन आदि ।

1.5 वेदों की रचना —

भारतीय मनीषियों के अनुसार वेद नित्य सनातन शाश्वत और अपौरुषेय हैं जिनका निर्माण सृष्टि रचना के आदि में स्वयं ईश्वर ने किया था। ईश्वर के द्वारा आधारभूत होने के कारण इनका अस्तित्व प्रलय के पश्चात् भी बना रहता है किंतु फिर भी मन में यह जिज्ञासा उठती है कि इस अलौकिक वैदिक ज्ञान की दिव्य ज्योति ने किस काल

में भारत वर्ष की इस पुण्य धरा पर आलोकित हुई होगी। इस ज्ञानज्योति को ईश्वर कृत मानने वाली भारतीय परंपरा के अतिरिक्त शेष जितने मतों और सिद्धांतों का वर्णन हुआ है। वह सब अनुमान प्रणाली पर ही आधारित हैं। अतः वेद के प्राचीनतम सूत्रों की रचना के संबंध में दो विचारधाराओं को स्थापित किया गया है। एक ओर भारतीय आस्तिक हिंदुओं के अनुसार वेद अपौरुषेय, अनादि तथा शाश्वत है जिनका आविर्भाव आदिकाल में ऋषियों के शुद्ध अंतःकरण में समाधि अवस्था में ईश्वर के द्वारा हुआ था। तत्पश्चात् इन मंत्रों की रक्षा मनीष, प्रज्ञा, ऋतंभरा से परिपूर्ण गुरुओं ने गुरु शिष्य परंपरा में कंठस्थ संचरण के द्वारा किया। जिन्होंने वेद मंत्रों का दर्शन किया था वे ऋषि कहलाते थे— ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः।

अर्थात् ऋषि मन्त्रार्थ के द्रष्टा होते हैं। आचार्य औपमन्यव ने भी कहा है कि वेदों में प्रयुक्त स्तुतिपरक मंत्रों के वास्तविक अर्थ का साक्षात्कार करने वालों को ऋषि नाम से पुकारा जाता है। तपस्या तथा ध्यान की स्थिति में इनको स्वयंभुव वेद मंत्रों का ज्ञान हुआ इसलिए यह ऋषि कहलाए। यह अर्थदर्शन ही ऋषित्व है—ऋषीणां मन्त्रद्रष्टयो भवन्ति ।

तैत्तिरीय संहिता, ऐतरेय और शतपथ ब्राह्मण तथा सर्वानुक्रमणी आदि में मन्त्रार्थ द्रष्टाओं को ही ऋषि नाम से सम्बोधित किया गया प्रमाणित होता है—

स पूषा एतं मन्त्रम पश्यत्। सूर्यस्य त्वा चक्षुषा प्रतिपश्या मीति ।। तै०सं०—2/6/8

महीं गामिति काण्वो हैनां मदर्श । शत० ब्रा० — 9 /2/2/28

गृत्समदो द्वितीयं मण्डलमपश्यत्। सर्वानुक्रमणी—2/ 1

इस प्रकार यह पूर्णरूपेण स्पष्ट है कि वेद मंत्रों के द्रष्टा तथा साक्षात्कार करके उनका व्याख्यान और प्रचार करने वालों को ऋषि कहते हैं। यदि यह ऋषि वेद मंत्रों के रचयिता होते तो उपर्युक्त सभी वाक्यों में अपश्यत् (देखा) के स्थान पर अरचयत् (बनाया) क्रिया का प्रयोग होता और यदि ऋषियों को मन्त्रद्रष्टा न मानकर मंत्र रचयिता माना जाए तो भी अनेक भ्रांतियां उत्पन्न हो जाएंगी जैसे—वेदों में अनेक ऐसे मंत्र हैं जिनके एक नहीं अपितु अनेकानेक ऋषि हैं। दो-दो, चार-चार वाले ही अगणित मंत्र हैं। सौ वानप्रस्थ ऋषि हैं। इसका तात्पर्य यह है कि 24 अक्षरों के गायत्री छंद के इस मंत्र को ऋषियों ने मिलकर बनाया है। ऋग्वेद के आठवें मंडल के तीन मंत्रों वाले सूक्त 34 को सहस्र संख्याका ऋषयः अर्थात् एक हजार (1000) ऋषियों ने मिलकर बनाया होगा। मंत्र के अर्थ को जानने, उसका विनियोग व्याख्यान और प्रचार करने वाले दो हजार व्यक्ति भी हो सकते हैं। इस प्रकार तो एक मंत्र को अनेक दृश्यों द्वारा रचा जाना एक निर्भ्रान्त कल्पना तथा सर्वथा असंगत होगा जो कि एक दुष्कर कार्य नहीं अपितु असंभव होगा। वेद में ऐसे अनेक सूक्त हैं जो चारों वेदों में पाए जाते हैं जैसे पुरुष सूक्त तथा अनेक मंत्र भी हैं ऐसे हैं जिनके भिन्न भिन्न ऋषि भी हैं जैसे कि उदाहरणार्थ आग्नेय सुपथा राये..... यह प्रसिद्ध मन्त्र ऋग्वेद (1/819/1) में तथा यजुर्वेद (40 / 16) में भी हैं जिसके ऋग्वेद में ऋषि अगस्त्य तथा यजुर्वेद में दध्यङ्अथर्वण हैं। वेद में अनेक ऐसे भी मंत्र हैं जो एक ही वेद में अनेकशः प्रयुक्त हुए हैं और जिनके भिन्न-भिन्न ऋषि भी हैं जैसे—“इडा सरस्वती मही” इस मंत्र के ऋग्वेद में ऋषि (1/13/19) मेधातिथि काण्व हैं तो (5/5/8) के बहुश्रुत आत्रेय हैं। निष्कर्ष यह निकलता है कि वैदिक ऋषि रचयिता न होकर अपितु वेद मंत्रों के द्रष्टा मात्र हैं। जिस प्रकार ईश्वर अखंड अनादि तथा अनश्वर है उसी प्रकार वैदिक ज्ञान भी अखंड अनादि अनंत तथा अनश्वर है। ऋग्वेद का पुरुष सूक्त वेदों के निर्माण को स्वयं प्रमाणित करता है

तस्मात् यज्ञात् सर्व हुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे ।

छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ।। ऋ० – (10/90/9)

इन मनीषियों का कहना है कि वेद नित्य हैं। जो सृष्टि के आरंभ में ही परमात्मा के द्वारा निर्मित किए गए हैं। जिस परमात्मा ने सृष्टि की रचना की है उसी के द्वारा वेद का आविर्भाव हुआ है अतः ऋग्वेद का ही यह कथन आपको बताएगा कि किस प्रकार वेद का आविर्भाव हुआ है –

यस्माद्दृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन् ।

सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखम् ।।

इस वेद वाक्य में यज्ञ अथवा ईश्वर से (ऋक, यजुः, साम तथा अथर्व) चारों वेदों की उत्पत्ति का वर्णन प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य प्रमाण भी हैं अरस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यद् ।

वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः ।।

युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः । बृहदारण्यकोपनिषद् (2/4/10)

लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाताः स्वयंभुवाः ।।— ऐतरेय ब्राह्मण (सायणभाष्य)

ये वेद मंत्र प्रमाणित कर रहे हैं कि वेद ईश्वर प्रदत्त हैं, ये ईश्वर की वाणी हैं ।

दूसरी विचारधारा के अंतर्गत वैदिक वाङ्मय का अध्ययन करने वाले कुछ पाश्चात्य आलोचक तथा इन्हीं का अनुकरण कर कुछ भारतीय आलोचक भी आते हैं जिन्होंने वेदों को नित्य सनातन संस्कृति तथा अपौरुषेय नामांकन विषयों के द्वारा निर्मित माना है तथा भाषा विज्ञान, ज्योतिष, इतिहास और भौगोलिक स्थितियों के आधार पर ऋग्वेद को सर्व प्राचीन मानकर समय निर्धारित करने का प्रयत्न किया है 1— भाषा विज्ञान तथा इतिहास आधारित मत—प्राचीन वैदिक वाङ्मय के काल निर्धारण के संबंध में सर्वप्रथम पाश्चात्य विद्वान मैक्समूलर ने प्रयास किया इनके अनुसार प्राचीन भारतीय इतिहास में दो तिथियां सर्वमान्य हैं, सिकंदर का आक्रमण और बौद्ध धर्म का उदय । बौद्ध धर्म (500 ई०) के समय तक समस्त वैदिक वाङ्मय की रचना पूर्ण हो चुकी थी अतः उन्होंने वैदिक युग का अंतिम काल 600 ई० पूर्व का मानकर समस्त वैदिक वाङ्मय को चार भागों में विभाजित किया है। प्रत्येक काल में साहित्य निर्माण तथा विकास हेतु 200 वर्षों का समय पर्याप्त माना है –

- 1) छंद काल 1000 ई० पूर्व से 1200 ई० पूर्व।
- 2) मंत्र काल 800 ई० पूर्व से 1000 ई० पूर्व।
- 3) ब्राह्मण काल 600 ई० पूर्व से 800 ई० पूर्व।
- 4) सूत्र काल 600 ई० पूर्व से 2000 ई० पूर्व।

उपर्युक्त आधार पर इन्होंने ऋग्वेद के रचना काल का प्रारंभ 1200 ई० पूर्व माना है। उनकी दृष्टि में यही मौलिकता का युग था। कुछ समय तक यह मत मान्य सिद्धान्त के रूप में चलता रहा तथा कोलब्रुक, विल्सन तथा कीथ आदि विद्वानों ने भी मैक्समूलर के मत का समर्थन किया। किन्तु सामान्य सिद्धान्त के रूप में नहीं चल सका। स्वयं मैक्समूलर को ही यह समय कम जान पड़ा तो उन्होंने अपनी ही पुस्तक "Chips from a German work & shop" में समय को बढ़ाकर 1500 विक्रम पूर्व

निर्धारित किया। सन् 1890 ई० में प्रोफेसर मैक्समूलर "Physical Religion" भौतिक धर्म में स्वयं की भूल को स्वीकार कर लिखा है— "इस पृथ्वी तल पर कोई ऐसी शक्ति नहीं है जो कभी यह निश्चय कर सके कि वैदिक मंत्रों की रचना 1000—1500, 2000 अथवा 3000 विक्रम पूर्व में की गई हो। फिर भी भारतवर्ष या भारतीय संस्कृति का यह दुर्भाग्य है कि हम आज भी वेदों के काल निर्णय के संबंध में प्रोफेसर मैक्समूलर द्वारा निर्धारित 1200 विक्रम पूर्व को ही शाश्वत सत्य मानते हैं।

प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् विन्टरनिट्स ने वैदिक साहित्य की रचना के लिए 2500—2600 ई० पूर्व का समय निर्धारित किया है। किन्तु साथ ही साथ सन्देह से भी ग्रसित रहे क्योंकि ऋग्वेद की भाषा उन पुराने फारसी शिलालेखों से मिलती जुलती है जो लगभग 600 ईसवी पूर्व के हैं। अतः इनका भी मत निराधार है। डॉ० जैको ने भी मैक्समूलर द्वारा निर्धारित काल के निकट (लगभग 1300) का समय स्वीकार किया है। इनका मानना है कि आर्यों की भारतीय और ईरानी शाखाएं जो पहले एक ही थी 1300 विक्रम के आस-पास अलग हुई थी और यही वह समय था जब ऋग्वेद की रचना हुई थी। 1907 में एशिया माइनर से प्राप्त 1400 विक्रम पूर्व के अभिलेखों में मित्र वरुण, इंद्र, नासत्य आदि देवताओं के संबंध में उल्लेख उस समय की दोनों शाखाओं की भाषा की समानता को सिद्ध करते हैं। उनका कहना है कि जैको के अनुसार यदि आर्यों की भारतीय और ईरानी शाखाओं के पृथक् होने के समय को 4500 ईसवी पूर्व मान लिया जाए तो भी 3000 वर्षों तक उनकी भाषाएं अपरिवर्तित ही रही होंगी। अतः ऋग्वेद का रचनाकाल 1300 या 1400 ईसवी पूर्व का रहा होगा।

2 — ज्योतिर्विज्ञान पर आधारित मत— लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक का मत ज्योतिष विज्ञान पर आधारित है। उन्होंने तीन प्रकार के पंचांगों पर विचार किया है इसमें सर्वप्रथम पंचाङ्ग के समय को अदितिकाल अथवा मृगशीर्ष पूर्वकाल है इसकी मर्यादा स्थूल रूप से 6000 से 4000 वि० पू० तक जाती है। इस समय वैदिक मंत्रों की उत्पत्ति नहीं हुई थी। दूसरा मृगशीर्ष काल है, जिसका समय चार हजार (4000) से पच्चीस सौ(2500) विक्रम पूर्व तक जाता है। यह काल बसंत संपात के आर्द्रा नक्षत्र से कृतिका नक्षत्र में आने तक का है। यही समय अति महत्वपूर्ण है क्योंकि इसी काल में ऋग्वेद के सूत्र की रचना हुई थी। कृतिका काल जिसका समय 2500 साल से 1400 विक्रम पूर्व है। इसमें तैत्तिरीय संहिता तथा शतपथ आदि अनेक ब्राह्मण ग्रंथों का निर्माण हुआ। चतुर्थकाल अर्थात् अंतिम काल 1400—500 वि० पू० का है इसके अंतर्गत श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र तथा दर्शन सूत्रों की रचना हुई।

तिलक महोदय ने अपनी पुस्तक "Arctic Home in the Vedas" में लिखा है कि ऋग्वेद में कथित प्राचीन सूत्र, ऋषि और देवता ये सभी हिमपूर्व काल के हैं उत्तर काल के नहीं। हिमपात कम से कम 10000 वर्ष पूर्व हुआ था और उनके अनुसार वैदिक सूक्त इससे भी प्राचीन हैं। इस प्रकार तिलक महोदय ने पाश्चात्य विद्वानों के सम्मुख वेदों की प्राचीनता सिद्ध की है। प्रोफेसर जैकोबी महोदय का वैदिक काल विषयक सिद्धांत ज्योतिर्विज्ञान पर ही आधारित है इन्होंने तिलक जी के अनुसार ही कृतिका और बसंत संपात नक्षत्रों के आधार पर वैदिक वाङ्मय का रचनाकाल 4598 ईसवी पूर्व तथा ब्राह्मण ग्रंथों का रचनाकाल 2500 ईसवी पूर्व के बाद का स्वीकार किया है। प्रोफेसर जैकोबी ने ब्राह्मण ग्रंथों की रचना के लिए अनुमानित कल्पना करते हुए उनके उदय काल तथा सम्यता विकास के लिए 4500 ईसवी पूर्व का समय माना। इन्होंने एक अन्य ज्योतिष संबंधी प्रमाण के अनुसार कहा कि कल पुत्र के विवाह प्रकरण के वर्णन से संकेत मिलता है कि ध्रुवतारा पहले अधिक प्रकाशमान तथा स्थिर था और यह स्थिति 2700 ईसवी पूर्व में थी क्योंकि ऋग्वेद के विवाह सूक्त में ध्रुवदर्शन

की प्रथा दृष्टिगोचर नहीं होती। अतः ऋग्वेद का समय 3000 से पहले का रहा होगा महोदय ने भी ज्योतिष को आधार मानकर वैदिक काल 1186 ईसवी पूर्व माना है। इनका कहना है कि 1200 ईसवी पूर्व तक भारतीयों ने ज्योतिष में पर्याप्त उन्नति प्राप्त कर ली थी। शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने अपने ग्रंथ भारतीय ज्योतिष शास्त्र में कहा है कि पहले कृतिका नक्षत्र पूर्व की ओर दिखाई देता था और आज कुछ उत्तर की ओर दिखाई देता है यह स्थिति 2500 ईसवी पूर्व में थी और यही ब्राह्मण काल था। छत्रिय संगीता का काल 3000 इससे पूर्व है इस आधार पर ऋग्वेद लगभग 3500 ईसवी पूर्व का होना चाहिए।

3 – भूगोल तथा भूगर्भ विज्ञान पर आधारित मत – श्री नारायण भवन के राम बाबू जी ने भूगर्भ शास्त्र और ज्योतिष के आधार पर वेद का निर्माण काल आज से 9000 वर्ष पूर्व स्थिर किया है क्योंकि ऋग्वेद के मंत्रों (9/33/6, एवं 10/47/2) के अनुसार सप्तसैन्धव प्रदेश के चारों ओर चार समुद्र थे। वर्तमान राजपूताना के दक्षिण में समुद्र था, जिसमें सरस्वती नदी गिरती थी। इसका वर्णन ऋग्वेद में आया है और यह स्थिति भूगर्भशास्त्रियों के अनुसार 9000 वर्ष पूर्व रही होगी। उपर्युक्त चारों समुद्र की स्थिति भूगर्भ शास्त्री अविनाशचंद्र के मत में 25000 वर्ष पूर्व थी इन्होंने ऋग्वेद का रचनाकाल 25000 ई० पू० निर्धारित किया है। डा० सम्पूर्णानन्द ने भूगर्भ शास्त्र के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि आर्यों का आदिम निवास सप्तसैन्धव प्रदेश था। इस समय हिमालय समुद्र से ऊपर उठ रहा था। पृथ्वी में बराबर भूकम्प आते थे, पर्वत चञ्चल थे। भूगर्भशास्त्रियों के अनुसार यह स्थिति 5000 ईसवी पूर्व से 25000 ईसवी पूर्व तक थी। अतः की ऋग्वेद की रचना इसी समय में हुई होगी।

एडवर्ड माया के अनुसार वैदिक देवता आदिकाल के हैं (आर्य से तात्पर्य भारोपीय आर्यों से है) उस समय कुछ आर्य पश्चिमोत्तर भारत की ओर बढ़े और तभी उन्होंने अति पुरातन ऋग्वेद की रचना की जो 1580 ई०पूर्व के बाद की नहीं है। प्राचीन भारतीय विद्वानों के मतानुसार किस काल में वेदों के प्राचीनतम शब्दों का प्रयोग हुआ है इसका निर्णय करना मात्र मूर्खता होगी। वैदिक काल का निर्णय करना केवल अनुमन्ति कल्पना करना ही है जैसे पाश्चात्य तथा कुछ भारतीय अनुसंधान शास्त्रियों ने की है। इन विद्वानों के मतों से सदा से ही अंतर चला आ रहा है और यह अंतर कुछ शताब्दियों का न होकर अभी तो असंख्य संस्कृतियों का है अनुसंधान शास्त्रियों ने वैदिक काल निर्णय के अनुसंधान में अपने जीवन को को व्यर्थ में ही गवाया है और अनेक तथ्यों तथा सहतथ्यों को प्रस्तुत कर सामान्य जनजीवन को तथा स्वयं को भी भ्रमित किया है। क्योंकि ये प्रकांड विद्वान् स्वयं के ही मतों के प्रति आश्वस्त नहीं थे। इन्हीं पाश्चात्य विद्वानों में एक विद्वान् डॉ० वेबर ने वेदों के रचना काल के संबंध में अपना कोई निर्णय अवधारणा तथा अनूसूची न रखकर अप्रत्यक्ष रूप से घोषणा करते हुए लिखा है कि वेदों का समय निश्चित नहीं किया जा सकता। ये उस समय के बने हुए हैं जहां तक पहुंचने के लिए हमारे पास उपयुक्त साधन नहीं है वर्तमान प्रमाण राशि हम लोगों को समय के उन्नत शिखर पर पहुंचाने में सर्वथा असमर्थ है अतः वेद अति प्राचीन है, कहकर बेवर मौन रहे। इस प्रकार वेद नित्य सनातन तथा शाश्वत है अतः वेदों के काल निर्धारण पर प्रश्न उठाना स्वयं प्रश्न चिन्ह है।

वेद अपौरुषेय हैं। पूर्व मीमांसाकार जैमिनी तथा भाष्यकार शबरस्वामी तथा वार्तिककार कुमारिल भट्ट ने इसका निर्देशन किया है इनकी युक्तियां हैं। (क) जो वस्तु जिसके द्वारा निर्मित होती है, उसके साथ उसके कर्ता का स्मरण किसी न किसी रूप में बना रहता है, किन्तु वेद के कर्ता का निर्भ्रान्त रूप में आज तक किसी को स्मरण नहीं है। इससे सिद्ध होता है कि इनका कोई कर्ता नहीं है। (ख) मनुष्य जिस वर्ग देव तथा देवता इत्यादि को प्रत्यक्ष नहीं देख सकता अथवा किस कर्म के द्वारा आत्मा में कैसा

अपूर्व अदृष्ट संस्कार उत्पन्न होता है, यह नहीं जान सकता इन्हीं स्वर्ग, अपूर्व तथा देवता प्रभृति का वेदों में विवरण है। बिना ज्ञान के शब्द प्रयोग हो नहीं सकता, इसलिए प्रश्न यह है कि वेद रूप में शब्दों के प्रयोगकर्ताओं को परोक्ष वस्तुओं का ध्यान कैसे हुआ ? यदि इसके उत्तर में यह कहा जाए कि बिना ज्ञान के ही दूसरों को वंचित करने के लिए ऐसे शब्द गढ़े गए तो यह ठीक नहीं क्योंकि वेदों की सुव्यवस्थित शब्द रचना, कार्य कारण भाग की प्रामाणिक सत्ता, साध्य-साधन तथा इतिकर्तव्यता रूप से तीन अंशों की प्राप्ति से वेद अल्पज्ञों की कृति नहीं लगते। दूसरे वृष्टि और आरोग्य प्राप्ति प्रभृति प्रत्यक्ष लाभों के संदर्भ में वेद वर्णित उपायों का फल दिखलाई देता है। इससे यह सिद्ध है कि स्वर्गादि के विषय में अधिक विवरण प्रामाणिक ही हैं। ऐसी स्थिति में प्रश्न है कि स्वर्ग आदि का ज्ञान हो नहीं सकता। यह माना जाए कि ऋषि मुनियों ने योग और तपस्या से इनका ज्ञान प्राप्त कर लिया है ठीक नहीं लगता क्योंकि तब प्रश्न यह होगा कि योग और तपस्या की प्रेरणा बिना वेद के ऋषियों को कहां से मिली ? क्योंकि वेद से ही यज्ञ तथा तप का ज्ञान होता है। यदि वेद को यज्ञ तथा तप इत्यादि से उत्पन्न मान लिया जाए तो अन्योन्याश्रय दोष हो जाएगा। इसलिए इस दोष से बचने का उपाय वेद को स्वतः प्रादुर्भूत मानना ही है। मंत्रों के साथ जिन ऋषियों का उल्लेख मिलता है, वे प्रवचन कर्ता हैं। —आख्या प्रवचनात् (मीमांसा सूत्र) ।

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार प्रज्वलित अग्नि से छोटी छोटी चिनगारियां निकलती हैं। उसी प्रकार महाभूत परमात्मा के निःश्वास से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद प्रकट होते हैं। —

यथा प्रदीप्तात् पावकाद् विस्फुलिङ्गा व्युच्चरन्ति, एवं वा अरे अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इति । (शत० ब्रा० 14) ।

जैसे श्वास प्रश्वास के ग्रहण धारण में मनुष्य स्वतन्त्र नहीं है, उस इच्छा से श्वास-प्रश्वास नहीं चलते वैसे ही वेद निर्माण में भी ईश्वर स्वतंत्र नहीं है। नित्य वेद उससे प्रकट भर हो जाते हैं। इसी प्रकार के कथन स्मृतियों में भी हैं।

अनादि निधना वागुत्सृष्टा स्वयंभुवा ।

आदौ वेदमयी नित्या सर्वाः प्रवृत्तयः ॥ मीमांसकों का अभिमत अपौरुषेय का निरूपण किया गया है

2 — न्याय वैशेषिक दर्शनों में ईश्वर को वेद का रचयिता माना गया है। उसके अनुसार प्रत्येक ग्रंथ के रचयिता के द्वारा ही रचा जाता है, तो वेद ग्रंथ को अकस्मात् कैसे प्रादुर्भूत मान लिया जाए वेदों की वाक्य रचना स्पष्ट बुद्धि पूर्वक की हुई प्रतीत होती है। बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे (वैशेषिक सूत्र 6/1/1) इसलिए किसी बुद्धिमान को ही उनका कारण भी मानना पड़ेगा और वह परमेश्वर ही हो सकता है। निःश्वास रूप या उत्सृष्ट रूप का अभिप्राय यह है कि प्रतिकल्प में जब-जब सृष्टि होती है, तब-तब ये वेद इसी रूप में परमात्मा द्वारा निर्मित होते हैं।

अपने समर्थन में आचार्य को भी उद्धृत करते हैं —

तस्माद् यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।

छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ॥ (ऋ०सं० 10/10/9)

मन्त्रार्थ यह है कि सब के द्वारा पूजनीय और यजनीय परमात्मा से ऋक् यजुष, साम और छंद अर्थात् अथर्ववेद प्रकट हुए। दूसरी बात यह है कि ईश्वर को वक्ता मान लेने

पर वेदों के प्रमाण में कोई संदेह नहीं उठ सकता, क्योंकि वह परम आप्त (विश्वसनीय) है। उत्तर मीमांसा वेदान्त में भी इसी से मिलता जुलता सिद्धान्त माना जाता है। वहां केवल परम ब्रह्म ही पूर्ण नित्य माना जाता है। वेद भी ब्रह्म रूप ही हैं। परमात्मा ने ऋषियों की पश्यन्ती या मध्यमा वाणी में वेदों को प्रकट कर दिया और उन्होंने वैखरी द्वारा शिष्य प्रशिष्यों में उनका प्रचार किया। पुराणों ने परमात्मा और ऋषियों के मध्य ब्रह्मा को सम्मिलित कर दिया, जिन्हें ईश्वर से सर्वप्रथम वेद रूप ज्ञान मिला। अंततोगत्वा निष्कर्ष यह निकलता है कि भारतीय मनीषी वेद को सर्वथा नित्य और अपौरुषेय ही मानते हैं।

1.6 वेदों का महत्व

वैदिक साहित्य के महत्व के निम्नलिखित प्रमुख कारण प्रतीत होते हैं 1— धार्मिक दृष्टि से वेद भारत में सर्वोपरि हैं। यह हिंदू धर्म के मूल स्रोत हैं—वेदोऽखिलो धर्ममूलम्। वस्तुतः यह समस्त धर्मों के श्रेष्ठ तत्वों से सम्मिलित हैं, इसलिए मनु ने इन्हें धर्म मात्र का मूल स्रोत कहा है—

यः कश्चित् कस्यचित् धर्मो मनुवा परिकीर्तितः ।

स सर्वोऽभिहितो वेदे, सर्वज्ञानमयो हि सः ।। धर्म के जिज्ञासुओं के लिए वेद परम प्रमाण हैं— धर्मजिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः। आगे मनु ने वेदों को देवों, पितरों और मनुष्य सभी का नित्य नेत्र बतलाया है—

पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम् ।

अशक्यं चाप्रमेयं च वेदशास्त्रमिति स्थितिः ।।(मनुस्मृति, 12/94)

यज्ञ संस्था के उद्भव और विकास संस्कारों सहित समस्त दृष्टि अनुष्ठानों का विवरण वर्णाश्रम व्यवस्था पुरुषार्थ चतुष्टय तीन ऋणों तथा पंच महायज्ञ प्रवृत्ति का ही वेदों में निरूपण नहीं है अपितु आगे चलकर नाम, जप, तीर्थ स्नान आदि का विवरण भी इनमें सन्निहित है। एक प्रकार से संपूर्ण भारतीय या हिंदू धर्म के यह मूलाधार हैं पुरुष सूक्त मंत्र के अंश—तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्, से ज्ञात होता है कि सृष्टि व्यवस्था के प्रथम नियमों की संरचना भी वेदों में निरूपित हुई। दूसरा दार्शनिक दृष्टि से सभी आस्तिक दर्शन अपना मूल स्रोत वेद को ही बतलाते हैं। वैशेषिक दर्शन का सूत्र है—तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्। (1.1.3) तत् परमेश्वर का यहां वाचक है, जिसके वचन वेद हैं इसीलिए वे प्रमाण रूप में हैं। वेदांत में श्रुति को प्रत्यक्ष कहा गया है क्योंकि उसे अपने प्रामाण्य के लिए किसी भी अन्य की अपेक्षा नहीं होती— “प्रत्यक्षम् श्रुतिः प्रामाण्यं प्रत्यनपेक्षत्वात्”। ब्रह्मसूत्र (1.3.29) में श्रुति को नित्य कहा गया है— अत एव च नित्यत्वम्। मीमांसा का तो आविर्भाव ही वेद के गौरव के संवर्धन हेतु हुआ। वह उसे सर्वस्व ही मानती है। वाचस्पति मिश्र के अनुसार—महाप्रलय में नित्य सर्वज्ञ परमेश्वर वेद का प्रणयन कर सृष्टि के आदि में स्वयं ही विभिन्न दार्शनिक संप्रदायों का प्रवर्तन करता है—महाप्रलये तु ईश्वरेण वेदान् प्रणीय सृष्ट्यादौ स्वयमेव सम्प्रदायान् प्रवर्त्यत एवेति भावः।

3 — सामाजिक राजनैतिक और सांस्कृतिक दृष्टि से उपयोगी विभिन्न संस्थाओं का मूल आविर्भाव भारतीय परंपरा के अनुसार वेदों से ही हुआ जैसा कि मनु का कथन है

सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक् ।

वेदेशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे ।। (मनु०—1.21)

वर्ण व्यवस्था का मूल पुरुष सूक्त के— ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् प्रभृति मंत्र में ही है। तैत्तिरीय संहिता में 300 व्यवसायों का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त सामाजिक शिष्टाचार स्वजनों एवं माननीय के प्रति कर्तव्यों का निर्देश तो पर पद पर है। राष्ट्र रक्षा व उसके विविध उपायों, विभिन्न शासन प्रणालियों, संस्थाओं और सिद्धांतों का वर्णन भी वेदों में है। प्रजातांत्रिक पद्धति के अनुरूप वेद वैदिक वाङ्मय में सभा और समिति सदस्य जन आकांक्षाओं को पुरस्कृत करने वाली प्रतिनिधि संस्थाएं निरूपित हैं। आर्थिक नीतियों और सिद्धांतों के निर्धारण की दिशा में भी वेदों से हमें महत्वपूर्ण मार्गदर्शन प्राप्त हो सकता है। एक ही परिवार में विभिन्न व्यवस्थाओं के लोग कैसे सुख शांति और सौमनस्य से रहते थे इसकी सूचना निम्नलिखित मंत्र में मिलती है —

कारुरह ततो भिषगुपलप्रक्षिणी चना ।।

नानाधियो वसूयवोडनुगा इव तस्थिमेन्द्रायेन्द्रो परिस्रव ।। (ऋ० सं० 9.112.3)

अर्थात् मैं मंत्र समूहों का रचयिता अर्थात् कवि हूँ मेरा पुत्र वैद्य है मेरी कन्या बालू से जौ आदि को सेंकती है। इस प्रकार हम लोग भिन्न-भिन्न कार्य करते हुए भी परस्पर सहयोग से रहते हैं। भाई-भाई से द्वेष न करें, बहन-बहन से विरोध ना करें सभी लोग परस्पर मिलकर अपना-अपना कार्य करते हुए प्रेम पूर्वक रहें—

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वासा ।

सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वोचं वरत भद्रया ।।

अथर्ववेद का यह मंत्र आज के तनावपूर्ण वातावरण में जब सामाजिक संबंध कलुषित हो रहे हैं, कितना प्रासंगिक है कहने की आवश्यकता नहीं। ऐतिहासिक दृष्टि से वेदों की भारतीय इतिहास में आदिकाल के परिज्ञान के लिए तो आवश्यकता है ही, विश्व इतिहास के संदर्भ में भी बहुत उपादेयता है। प्रदेश के इतिहास, भूगोल, पर्यावरण नदियों संबंधी दास राज युद्ध विभिन्न राज्यों और जन समूह के विषय में वेदों में असीम सामग्री संचित है। गुजरात (द्वारका तथा लोथल) के उत्खनन से सिद्ध होता है सिंधु घाटी की सभ्यता और वेदों की वैदिक सभ्यता में पूर्णतया अभिन्नता थी।

4 — वैज्ञानिक और पर्यावरण इत्यादि की दृष्टि से भी वेदों में महत्वपूर्ण सामग्री के संकेत हैं। विज्ञान की विभिन्न शाखाओं भौतिकी, गणित, आयुर्विज्ञान, वनस्पति शास्त्र प्रवृत्ति की दृष्टि से वेदों का अनुशीलन होता जा रहा है। वैज्ञानिक तथ्यों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट कर रही है डॉक्टर महामना पंडित मधुसूदन ओझा, गिरधर शर्मा चतुर्वेदी और मोतीलाल शर्मा किंतु यह अध्ययन निरंतर अग्रसर हो रहा है। वैदिक गणित को अनेक सरकारों ने राज्य की इस पर भी मान्यता प्रदान की है श्री भारती कृष्ण तीर्थ की इस विषय पर लिखित पुस्तकों ने अनेक प्रतिष्ठित गणितज्ञों को इस दिशा में प्रेरित किया है इंजीनियरिंग कॉलेज के निवृत्त प्राचार्य डॉ. वी.के. वर्मा ने भौतिक विज्ञान के संदर्भ में वेदों का अनुशीलन किया है डॉ. वी.के. वर्मा वैदिक सृष्टि उत्पत्ति रहस्य 2 भाग बिलासपुर से प्रकाशित हुई है। अथर्व लक्ष्य में प्राप्त तथ्यों की प्रोफेसर ओमप्रकाश पांडे रांची स्थित रक्षा अनुसंधान केंद्र के एक वरिष्ठ वैज्ञानिक से जिज्ञासा की तो उसने उनके सत्य होने की पुष्टि की। पर्यावरण जल प्रदूषण से मुक्ति के संदर्भ में भी वेदों की प्रासंगिकता अधिक बढ़ती जा रही है। एक मीडिया अरण्यानी

वनों के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी देता है संभवत इन्हीं तथ्यों का ध्यान में रखकर महर्षि दयानंद सरस्वती ने बीजों को सभी शक्तियों से युक्त बतलाया था ।

5 – भाषा शास्त्रीय अध्ययन—भाषा शास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि से तो वेदों में इतनी प्रचुर सामग्री भरी पड़ी है कि अभी तक सब का विशद अध्ययन नहीं हो सका। लिक्विड के वक्त वक्त में भाषा की सामर्थ्य का सर्वप्रथम निरूपण है अथवा रीवा पर अमिताभ भादानी प्रकृति मंत्र में भाषा के चार रूप का उल्लेख है परंतु मध्यमा और बैखरी की अवधारणा का वही मूल्य है। प्रार्थी साक्ष्यों और यज्ञ निरुक्त में भाषा विज्ञान की ध्वनि रूप और अर्थ सभी इकाइयों की दृष्टि से विश्व विश्लेषण दिखाई देता है

6 – काव्यात्मक सौंदर्य की दृष्टि से—काव्य सौंदर्य की दृष्टि से भी अनुशीलन करने की प्रवृत्ति मनुष्य की बलवती होती जा रही है और अगर अलंकारों के कृत्रिम रूप सौंदर्य के कथा गायक रवि की उपलब्धियां हैं जो सामाजिक विकृतियों के निवारण में भी वैदिक साहित्य की उपादेयता है। उक्त के अध्ययन से किसी भी जुआरी को जुआ न खेलने की प्रेरणा मिल सकती है। उक्त में हारे हुए जुआरी का पश्चाताप इस सामाजिक बुराई को दूर करने में सहायक वेदों में काव्य का वह नैसर्गिक और दुर्लभ स्वरूप हमें दिखाई देता है जो अन्यत्र प्राप्त नहीं है।

1.7 सारांश

वैदिक साहित्य का इतिहास हमें उस जीवन से जोड़ता है जो कि धर्म, सत्य, कर्तव्य धुरी में प्रतिष्ठित था। चार ऋषियों के माध्यम से अनादि निधना वाणी को जनहित के लिए प्रादुर्भूत किया। ये ऋषि क्रमशः अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा थे। इन ऋषियों ने श्रुति परम्परा के द्वारा वेद ज्ञान को आगे बढ़ाया। प्रस्तुत इकाई में वैदिक साहित्य का संक्षिप्त विवरण है। इस विवरण में वेदों का संक्षिप्त परिचय, वेदों का रचना काल, वेदों का वर्ण्य विषय एवं वेदों का महत्व बताया गया है। आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि यह इकाई अध्ययनकर्ताओं को वेदों के अति सन्निकट ले जाएगी।

1.8 बोध प्रश्न

- 1) अधोलिखित प्रश्नों के सही उत्तरों पर सही का चिन्ह लगाइये
 - 1) वेद कितने हैं? —4/1 /6/8
 - 2) वेद हैं ?—पौरुषेय / अपौरुषेय
 - 3) वेदों को माना जाता है —स्वतः प्रमाण / परतः प्रमाण।
 - 4) अपौरुषेयं वाक्यं वेदः यह किस आचार्य की उक्ति है? महीधर / सायण
 - 5) अधिकांशतः वेद शब्द का प्रयोग होता है?—ज्ञान अर्थ के लिए। / ख्यात अर्थ के लिए।
- 2) किन किन भागों को वेद कहते हैं?
- 3) वेद शब्द किन धातुओं से बना है उन धातुओं को वर्णित कीजिए।

अभ्यास— प्रश्न 2

- 1) आदौ वेदमयी सर्वाः प्रवृत्तयः ।
- 2) तस्मात् यज्ञात् सर्व हुतः..... सामानि जज्ञिरे।

- 3) स सर्वोऽभिहितो सर्वज्ञानमयो हि सः ।
- 4) शब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे ।
- 5) ऋक् यजुः सामथर्वाख्यान.....पूर्वादिभिर्मुखैः ।

अभ्यास— प्रश्न 3

- 1) वेदों का परिचय दीजिए ।
- 2) वेद शब्द के अर्थ को स्पष्ट कीजिए

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

- 1) (4) 2— अपौरुषेय 3— स्वतः प्रमाण 4— सायण 5 ज्ञान अर्थ के लिए ।
- 2) 1— नित्या 2 ऋचः 3—वेदे 4 वेद 5 वेदान् ।



ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 2 संहिता परिचय

इकाई की रूपरेखा

- 2.0 प्रस्तावना
- 2.1 उद्देश्य
- 2.2 संहिताओं का परिचय
- 2.3 संहिताओं का विभाजन
- 2.4 संहिताओं की शाखाएं
- 2.5 संहिताओं का महत्व
- 2.6 सारांश
- 2.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 2.8 बोध प्रश्न/उत्तर अभ्यास प्रश्न/उत्तर

2.0 प्रस्तावना

संहिताएं विश्व की गौरवमयी प्राचीनतम साहित्यिक निधि हैं। ये अनादि काल से ही भारतीय परम्परा में अगाध और अनन्त ज्ञान का भण्डार मानी जाती रही हैं। भारतीय मान्यताओं के अनुसार संहिताएं ईश्वरीय ज्ञान और सत्य विद्याओं की प्रतिपादक हैं। इन संहिताओं में सभी विद्वानों द्वारा एकमत से ऋग्वेद संहिता को संसार का प्राचीनतम तथा प्रमुख ग्रन्थ माना गया है क्योंकि यही वह ग्रन्थ है जिसके मन्त्र सभी संहिताओं में उपलब्ध होते हैं। इसमें प्रयुक्त की गयी भाषा शैली, व्याकरण तथा मन्त्रों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि यह किसी एक निश्चित अवधि या किसी एक व्यक्ति विशेष के द्वारा रचित नहीं है अपितु विभिन्न कालों में विभिन्न ऋषियों द्वारा रचित मन्त्रों का संग्रह है।

2.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य वेद की संहिताओं से परिचय कराना है। उनके वर्ण्यविषय का अवलोकन कराना, वेद की कितनी शाखाएं हैं तथा संहिताओं का विभाजन किस किस प्रकार से किया गया है, वेदों का क्या महत्व है, इन विषयों को स्पष्ट किया जाना। वेद सभी सत्य विद्याओं के मूल हैं, वेदों में ही सभी ज्ञान विज्ञान निहित है इससे पूर्णतया हृदयंगम् कराना उद्देश्य है।

2.2 संहिताओं का परिचय।

ऋग्वेद संहिता

ऋच् या ऋक् का अर्थ है स्तुति परक मन्त्र। ऋच्यते स्तूयतेऽनया इति ऋक् जिन मन्त्रों के द्वारा देवों की स्तुति की जाती है उन्हें ऋक् (ऋच् या ऋचा) कहते हैं। ऋग्वेद में विभिन्न देवों की स्तुति वाले मन्त्र हैं। अतः इसे ऋग्वेद कहते हैं। इन मन्त्रों

के द्वारा देवों का आह्वान किया जाता है ऐसी ऋचाओं के संग्रह के कारण इसे ऋग्वेद संहिता कहते हैं। संहिता शब्द संकलन, या संग्रह का बोधक है।

संहिता शब्द का पारिभाषिक अर्थ है— “परः सन्निकर्षः संहिता” (अष्टा० 1/4/101) अर्थात् वर्णों के अत्यन्त सन्निकर्ष को संहिता कहते हैं। ऋग्वेद के दस मण्डलों में स्तुतिपरक मन्त्रों का संकलन है। इसमें कुल 1028 सूक्त और 10581 ऋचाएं हैं। चौदह छन्दों में समस्त मन्त्रों की रचना हुई है। ऋग्वेद के प्रमुख मन्त्रद्रष्टा ऋषि एवं ऋषिकाएं—

ऋषि—मधुच्छन्दा, मेधातिथि, दीर्घतमा, अगस्त्य, गौतम, पराशर, विश्वामित्र, गृत्समद, वसिष्ठ, भारद्वाज, आदि।, ऋषिकाएं—इन्द्राणी, शची, उर्वशी, कामायनी, श्रद्धा, घोषा, सरमा, विश्ववारा, रोमशा, आत्रेयी, ब्रह्मवादिनी, वागम्भृणी आदि।

यजुर्वेद संहिता

यजुष् यजुर् = यजुः ।

- 1) यजुर्यजते: (निरुक्त 7/12)। अर्थात् जिन मन्त्रों से यज्ञ किया जाता है, उन्हें यजुष् कहते हैं। 2—इज्यतेऽनेनेति यजुः। अर्थात् जिन मन्त्रों का यज्ञ के कर्मकाण्ड से साक्षात् सम्बन्ध है, इसे यजुर्वेद या अध्वर्युवेद भी कहा जाता है। यज्ञ में अध्वर्यु नामक ऋत्विज् यजुर्वेद का प्रतिनिधित्व करता है और वही यज्ञ का नेतृत्व करता है। अतएव सायण ने कहा है कि वह यज्ञ के स्वरूप का निष्पादक है।
- 3) अनियताक्षरावसानो यजुः अर्थात् जिन मन्त्रों में पद्यों के तुल्य अक्षर संख्या निर्धारित नहीं होती है वे यजुष् हैं।
- 4) शेषे यजुः शब्दः। (पूर्व मीमांसा 2.1.37) अर्थात् पद्यबन्ध और गीति से रहित मन्त्रात्मक रचना को यजुष् कहते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि सभी गद्यात्मक मन्त्र रचना यजुः की कोटि में आती है।

वैदिक साहित्य

5—‘एकप्रयोजनं साकांक्षं पदजातमेकं यजुः’ अर्थात् एक उद्देश्य से कहे हुए साकांक्ष एक पद समूह को एक यजुः कहेंगे। इसका अभिप्राय है कि एक सार्थक वाक्य को यजुः की एक इकाई माना जाता है। तैत्तिरीय संहिता के भाष्य की भूमिका में सायण ने यजुर्वेद का महत्व बताते हुए कहा है कि यजुर्वेद भित्ति (दीवार) है और अन्य ऋग्वेद एवं सामवेद चित्र हैं। इसलिए यजुर्वेद सबसे मुख्य है। यज्ञ के आधार बनाकर ही ऋचाओं का पाठ और सामगान होता है।

भित्तिस्थानीयो यजुर्वेदः, चित्रस्थानावितरौ।

तस्मात् कर्मसु यजुर्वेदस्यैव प्राधान्यम्। तैत्तिरीय भूमिका

सामवेद संहिता

समस्त सामवेद का मूल्य तत्व और उद्गीथ का नामांतर ओङ्कार भगवत् स्वरूप है। इसीलिए गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने सामवेद को ही अपना स्वरूप बतलाया है ‘वेदानां सामवेदोऽस्मि’ (गीता 10/22)। सामवेद को उद्गातृवेद भी कहा जाता है। क्योंकि यज्ञ में उद्गातृ ऋत्विक् ही इन सामों के अनेक अवान्तर भेद प्रभेद और उनके नाम ऋगादि अत्यन्त प्राचीन सभ्यताओं में प्राप्त होने के कारण साम गान परंपरा बहुत पुरातन प्रतीत होती है। सामन या साम का अर्थ गीत युक्त मन्त्र है। साम के लिए गीत युक्त होना अनिवार्य है। ऋग्वेद के मन्त्र (ऋक् या ऋचा) जब विशिष्ट गान

पद्धति से गाये जाते हैं, तब उनको सामन् (साम) कहते हैं। अतैव पूर्व मीमांसा में गीति या गान साम कहा गया है। गीतिषु सामाख्या (पूर्व० 2.1 .36)। ऋग्वेद में स्तोत्ररूप या गीतिरूप मन्त्र को आंगूष्मं साम (ऋग्० 1.62.2) आंगूष्मं का अर्थ है स्तोत्र या गीतिरूप। इससे ज्ञात होता है कि जब मन्त्र या ऋचा गीति के रूप में प्रस्तुत की जाती है तो उसे साम कहते हैं।

ऋग्वेद और सामवेद का अन्योन्याश्रित संबंध ऋचा + गान + सामन् है। गीतयुक्त ऋचा साम हो जाती है। इस भाव को अथर्ववेद, ऐतरेय ब्राह्मण, छांदोग्य और बृहदारण्यक उपनिषद् में अनेक रूप से प्रकट किया गया है। कहीं पर सामान्य रूप से और कहीं आलंकारिक रूप में सा + अम = साम । 1—स या सा (ऋचा) + अम (गीति) = सामन्। इसका अभिप्राय है कि स या सा ऋग्वेद है और अम संगीत है। दोनों के मिश्रण से सामवेद बनता है। 2— सा (अर्थात् ऋचा पत्नी है) अम (गान पुरुष है) = सामन् पति पत्नी के तुल्य ऋग्वेद और सामवेद का सम्बन्ध है।

(क) या ऋक् तत् साम। (छांदोग्य उपनिषद् 1.3.4)।

(ख) ऋचि अध्यूढं साम। (छा० उप० 1.6.1)

(घ) सा च अमश्चेति तत् साम्नः सामत्वम्। (बृहदा० प० 1.3.22)

ब्राह्मण ग्रंथों में सामवेद के दार्शनिक और आध्यात्मिक रूप का वर्णन किया गया है। सामवेद उपासना का वेद है। इसमें अध्यात्मपरक मंत्रों का मुख्य रूप से संकलन है, अतः इसका आध्यात्मिक रूप होना चाहिए। यजुर्वेद कहता है कि सामवेद प्राणतत्त्व है अर्थात् सामवेद से प्राणशक्ति की वृद्धि होती है। साम प्राणं प्रपद्ये। यजु० (36,1)। प्राणो वै साम। (शत० ब्राह्मण 14.8.14.3) और स यः प्राणस्तत् साम। (जैमिनी उप० ब्राह्मण 1.25. 10)। अन्य उपनिषद् ब्राह्मणों में भी यही बात कही गई है। सामवेद को ऋग् और गीति का समन्वय मानने पर जैमिनी उपनिषद् ब्राह्मण का कथन है कि यह वाक्तत्व (सा) (अम) का समन्वय है, ब्रह्म है और प्राण उसमें शक्ति है। सामवेद सूर्य का प्रतिनिधि है, अतः इसमें सौर ऊर्जा है। सूर्य सर्वत्र समभाव से विद्यमान है अतः समत्व के कारण सूर्य सामवेद है। सम का ही भावार्थक रूप साम है। सामवेद सूर्य है और सामवेद के मंत्र सूर्य की किरणें हैं, अर्थात् सामवेद से सौर ऊर्जा मनुष्य को प्राप्त होती है—(आदित्यस्य) अर्चिः सामानि। (शत० 10.5.1.5)। सामवेद में साम (गीति) द्युलोक है, और एक ऋग् (ऋचा या मंत्र) पृथ्वी है, अतः सामवेद द्यु और भू का समन्वय है इस प्रकार सामवेद तीन प्रमुख शिक्षाएं देता है।

- 1) समत्व की भावना जागृत करना जहां जहां समत्व है, वहां वहां साम या सामवेद है। समत्व बुद्धि समत्व का प्रकाशन और समत्व की प्रतिष्ठा साम की प्रतिष्ठा है।
- 2) समन्वय की भावना। ऋग् और साम का समन्वय द्युलोक और पृथ्वी का समन्वय है। जीवन में समन्वय की भावना जागृत करना सामवेद की महत्वपूर्ण शिक्षा है।
- 3) साम प्राण है। जीवन में प्राणशक्ति या आत्मशक्ति की बुद्धि करना मानव का लक्ष्य है। प्राण और अपान शक्ति के समन्वय से आध्यात्मिक उन्नति करना ही योग एवं साधना है।

अथर्ववेद का सम्बन्ध ब्रह्मा नामक ऋत्विज से है। ब्रह्मा यज्ञाध्यक्ष एवं वेदत्रय का ज्ञाता होता था। यज्ञ का विधिवत् निरीक्षण करना उसका प्रमुख कार्य था। अथर्ववेद में इसके अनेक अभिधान उपलब्ध होते हैं। ब्रह्मवेद, अङ्गिरावेद, अथर्वङ्गिरस और अथर्ववेद। अथर्व शब्द 'थर्वकौटिल्ये' धातु से निष्पन्न है, जिसका अर्थ होता है अकुटिलता और हिंसावृत्ति से रहित मन वाला। मूल रूप से अथर्वन् शब्द का अर्थ है। अग्नि का उद्बोधन करने वाला पुरोहित। निरुक्त और गोपथ ब्राह्मण में अथर्वन् शब्द की दो प्रकार से व्याख्या की गई है। 1— अथर्वन् गतिहीन या स्थिरता से युक्त योग। निरुक्त के अनुसार अथर्वधातु का अर्थ है गति या चेष्टा, अतः अथर्वन् का अर्थ है। गतिहीन या स्थिर। इसका अभिप्राय है कि जो वेद में स्थिरता और चित्तवृत्तियों के निरोधरूपी योग का उपदेश है, वह अथर्वन् वेद है। 2— गोपथ ब्राह्मण में अथर्वन् (अथर्वा) शब्द अथर्वाक् का संक्षिप्त रूप माना गया है। अथ+ अर्वाक् = अथर्वा। गोपथ ने इसका अभिप्राय यह है कि समीपस्थ आत्मा को अपने अन्दर देखना या वह वेद जिसमें आत्मा को अपने अन्दर देखने की विद्या का उपदेश है। अथर्ववेद में ऐसे अनेक सूक्त हैं, जिनमें आत्मविद्या (4.2), आत्मा (5.9), ज्येष्ठ ब्रह्म (107), ब्रह्मविद्या (4.1), उच्छिष्ट ब्रह्म (11.7), महद्ब्रह्म (1.32), और ब्रह्मविद्या का विस्तृत वर्णन है।

2.3 संहिताओं का विभाजन

ऋग्वेद का विभाजन

ऋग्वेद संहिता का विभाजन दो प्रकार से किया गया है 1—अष्टक अध्याय वर्ग और मंत्र। 2— मंडलक्रम अनुवाक, सूक्त और मंत्र।

- 1) अष्टक क्रम— इसमें सम्पूर्ण ऋग्वेद को 8 समान भागों में बांटा गया है। इन्हें अष्टक कहा है यह विभाजन संख्या और गणना की दृष्टि से सुंदर है। प्रत्येक अष्टक को 8 अध्याय में बांटा गया है अतः पूरे ऋग्वेद में $8 \times 8 = 64$ अध्याय हैं प्रत्येक अध्याय में वर्गों की संख्या भिन्न है। यह संख्या 25 से 49 तक है प्रत्येक वर्ग में मंत्रों की संख्या प्रायः 5 है। उस में वर्गों की संख्या भी 221 से लेकर 313 तक है। इस प्रकार ऋग्वेद में बालक के लिए सूक्तों को भी सम्मिलित करते हुए 8 अष्टक 64 अध्याय 2024 वर्ग और 10552 मंत्र हैं। इसमें बालखिल्य सहित 1027 सूक्त हैं और 3,97,256 अक्षर हैं।
- 2) मंडल क्रम यह विभाजन अधिक सुसंगत और उपयुक्त है। इसमें पूरे ऋग्वेद को ऋषि और देवता के अनुसार 10 मंडलों में विभक्त किया गया है। इसमें बालखिल्य के 11 सूक्तों के 80 मंत्रों को सम्मिलित करते हुए पचासी अनुवाक, 1028 सूक्त और 10,552 मंत्र हैं। इस विभाजन के संदर्भ व निर्देश में अनुवाक की संख्या छोड़ दी जाती है। संदर्भ में मंडल, संख्या, सूक्त और मंत्र संख्या ही देते हैं। जैसे —ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वां (ऋग्वेद 10/71 / 11) इसका अभिप्राय यह है कि यह मंत्र ऋग्वेद के दशम मंडल के 71 वें सूक्त का 11 वां मंत्र है। इसी प्रकार सर्वत्र मंडल सूक्त और मंत्रों की संख्या दी जाती है।

यजुर्वेद का विभाजन

शुक्ल एवं कृष्ण ये दो भागों में विभक्त है यजुर्वेद।

1—शुक्ल यजुर्वेद, 2—कृष्ण यजुर्वेद।

यजुर्वेद के दो संप्रदाय प्रचलित हैं। 1— आदित्य संप्रदाय 2— ब्रह्म संप्रदाय। शुक्ल यजुर्वेद आदित्य संप्रदाय से संबन्धित है और कृष्ण यजुर्वेद ब्रह्म संप्रदाय से। शतपथ ब्राह्मण में स्पष्ट उल्लेख है कि शुक्ल यजुर्वेद का आदित्य से संबन्ध है और यह याज्ञवल्क्य के द्वारा आख्यात है।

आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूंषि। वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येनदृ आख्यायन्ते॥ (शत० 14/9/4/33)घ

शुक्ल यजुर्वेद को ही वाजसनेयी संहिता और माध्यदिन संहिता भी कहते हैं। याज्ञवल्क्य ऋषि इसके आख्याता हैं। वे मिथिला के निवासी थे। पिता का नाम वाज सनेयी होने से याज्ञवल्क्य को वाजसनेय कहते थे। वाजसनेय से संबद्ध संहिता वाजसनेयी संहिता कहलायी। याज्ञवल्क्य ने सूर्य से इस वेद को प्राप्त किया था, अतः इसे माध्यदिन संहिता भी कहते हैं। शुक्ल और कृष्ण भेदों का आधार यह है कि शुक्ल यजुर्वेद में यज्ञ से संबद्ध विशुद्ध मंत्रात्मक भाग है। इसमें व्याख्या, विवरण और विनियोगात्मक भाग नहीं है। ये मंत्र इसी रूप में यज्ञों में पढ़े जाते हैं। विशुद्ध और परिष्कृत होने के कारण इसे शुक्ल (स्वच्छ, अमिश्रित) यजुर्वेद कहा जाता है।

कृष्ण यजुर्वेद का संबंध ब्रह्म संप्रदाय से है। इसमें मंत्रों के साथ ही व्याख्या और विनियोग वाला अंश भी मिश्रित है, अतः इसे कृष्ण (अस्वच्छ मिश्रित) कहते हैं। इसी आधार पर शुक्ल यजुर्वेद के पारायण कर्ता ब्राह्मणों को 'शुक्ल' और 'कृष्ण' यजुर्वेद के पारायण कर्ता ब्राह्मणों को मिश्र नाम दिया गया है।

इस विषय में एक आख्यायिका भी प्रचलित है कि गुरु वैशम्पायन एक बार अपने शिष्य याज्ञवल्क्य से रुष्ट हो गए और उन्होंने आदेश दिया कि वह उनकी शिक्षा लौटा दे। याज्ञवल्क्य ने सारी मंत्रविद्या उगल दी। वैशंपायन के अन्य शिष्यों ने तित्तिरि (तीतर) का रूप धारण करके उस उगले हुए को खा लिया अतः उनकी शाखा तैत्तिरीय कहलाई। याज्ञवल्क्य ने सूर्य की उपासना की और मध्याह्न के सूर्य से पुनः यजुर्वेद का ज्ञान प्राप्त किया अतः इसे माध्यनदिन संहिता भी कहते हैं।

सामवेद का विभाजन सामवेद के दो मुख्य भाग हैं। 1—पूर्वार्चिक, 2— उत्तरार्चिक आर्चिक का शाब्दिक अर्थ है ऋचाओं का समूह या संकलन ।

- 1) पूर्वार्चिक इसमें चार कांड हैं। (क) आग्नेय, (ख) ऐन्द्र, (ग)पावमान, (घ) आरण्यक काण्ड और परिशिष्ट के रूप में महानाम्नी आर्चिक । पूर्वार्चिक में 6 अध्याय हैं। अध्यायों के खण्ड किये गये हैं और इनको दशति नाम दिया गया है। दशति का अर्थ दश ऋचाएं हैं, परन्तु प्रत्येक दशति में दस संख्या प्रतिबन्ध नहीं है, कहीं कम हैं और कहीं अधिक। अध्याय 1 आग्नेय कांड है। अध्याय 2 से 4 तक ऐन्द्र कांड है। अध्याय 5 पावमान कांड है। अध्याय 6 आरण्यकाण्ड है। इसी का परिशिष्ट महानाम्नी आर्चिक (10 मन्त्र) है। अध्याय 1 से 5 तक की ऋचाओं को ग्राम गान कहते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि इनका गान ग्रामों में होता था। अध्याय 6 आरण्य कांड है। इसकी ऋचाओं का गान अरण्य (वन) में होता था।
- 2) उत्तरार्चिक इसमें 21 अध्याय (या 9 प्रपाठक) हैं और मन्त्रों की संख्या 1225 है। उत्तरार्चिक में कुल 400 सूक्त हैं। इनमें 287 सूक्तों में प्रत्येक में तीन तीन मंत्रों का समूह है। 66 में दो-दो मंत्र हैं और शेष 46 सूक्तों में 1 से 12 तक मन्त्रसमूह हैं।

मन्त्र संख्याविचार—सामवेद के पूर्वार्चिक में 650 मन्त्र हैं और उत्तरार्चिक में 1225। इस प्रकार पूरे सामवेद की मन्त्र संख्या 1875 है। इसमें ऋग्वेद से संकलित ऋचाएं 1771 हैं । अतः सामवेद में केवल 104 मन्त्र ही नये हैं। ऋग्वेद के 1771 मन्त्रों की संख्या

267 मन्त्र पुनरुक्त हैं तथा सामवेद के 104 नये मन्त्रों में भी 5 पुनरुक्त हैं। अतः पुनरुक्त मन्त्रों की संख्या 272 है। इस प्रकार ऋग्वेद में सर्वथा अप्राप्त मन्त्र केवल 99 हैं। इस प्रकार कह सकते हैं कि

सामवेद में ऋग्वेदीय मन्त्र $1504 + \text{पुनरुक्त } 267 = 1771$

सामवेद में नवीन मन्त्र $99 + \text{पुनरुक्त } 5 = 104$

कुल मन्त्र संख्या = 1875

अथर्ववेद का विभाजन

अथर्ववेद के परीक्षण से ज्ञात होता है कि इसके संकलन में कुछ विशेषताएं हैं। इसमें कहीं पर मन्त्रों की संख्या के आधार पर कांडों का विभाजन है और कहीं पर विषय की दृष्टि से। इस प्रकार अथर्ववेद को चार भागों में बांटा जा सकता है।

- 1) कांड 1 से 7 तक । इन कांडों के प्रत्येक सूक्त में मन्त्रों की संख्या पर ध्यान रखा गया है। जैसे कांड 1 के प्रत्येक सूक्त में प्रायः 4 मन्त्र हैं। कांड 2 में प्रायः 5 मन्त्र, कांड 3 में 6 मन्त्र, कांड 4 में 7 मन्त्र और कांड 5 में 8 मन्त्र । इससे ज्ञात होता है कि कांड 1 से 5 तक प्रत्येक कांड में सूक्तों के अन्तर्गत मन्त्रों की संख्या बढ़ती गई है। कांड 6 में प्रत्येक सूक्त में प्रायः 3 मन्त्र हैं और कांड 7 में 1 या 2 मन्त्र हैं। कांड 1 में 153, कांड 2 में 207, कांड 3 में 230, कांड 4 में 324, कांड 5 में 376 और कांड 6 में 454 ।
- 2) कांड 8 से 12। इन कांडों में अधिक मन्त्रों वाले सूक्त हैं, परन्तु विषय भिन्न हैं।
- 3) कांड 13 से 18 । इन कांडों में भी अधिक मन्त्रों वाले सूक्त हैं, परन्तु इनका विषय प्रायः एक ही है। जैसे कांड 13 में अध्यात्म, कांड 14 में विवाह, कांड 18 में पितृमेध।
- 4) कांड 19 और 20 । ये दोनों कांड प्रक्षिप्त ज्ञात होते हैं। पंचपटलिका और शौनकीय चतुराध्यायिका में अथर्ववेद के केवल 18 कांडों का ही उल्लेख है। कौशिक गृह्यसूत्र और वैतान श्रौतसूत्र में भी केवल 18 कांडों के ही मन्त्र प्रतीक के रूप में उद्धृत हैं। इस विषय में पर्याप्त मतभेद हैं कि अथर्ववेद में मौलिक कांड कितने हैं । कोई मूलकांड 13 मानते हैं, कोई 18 कोई 19 और कोई पूरे 20 । अथर्ववेद के कांड 20 के प्रायः सभी मन्त्र ऋग्वेद के इन्द्र विषयक सूक्तों से लिए गए हैं।

2.4 संहिताओं की शाखाएं

ऋग्वेद की शाखाएँ –

महर्षि पतञ्जलि (150) ने महाभाष्य में ऋग्वेद की 21 शाखाओं का वर्णन किया है।

एकविंशतिधा बाह्वृच्यम् (महा० भाष्य आह्निक 1)।

इनमें से केवल 5 शाखाओं का मुख्य रूप से उल्लेख मिलता है। शेष के नाम भी संदिग्ध हैं। चरण व्यूह के अनुसार प्रमुख 5 शाखाएं हैं । 1— शकल 2— वाष्कल 3—आश्वलायन 4—शाखायन 5—मांडूकायन ।

1) शकल—

संप्रति ऋग्वेद की यही शाखा प्रचलित है। यही शाखा उपलब्ध है। इसी के अनुसार आगे वर्ण्य विषय मंत्र संख्या आदि दिए गए हैं।

2) वाष्कल—

यह शाखा उपलब्ध नहीं है शकल शाखा में 1017 सूक्त हैं परंतु वाष्कल शाखा में 1025 सूक्त थे अर्थात् 8 सूक्त अधिक थे। एक संज्ञान सूक्त को ऋग्वेद के अंत में ले लिया है और शेष 7 सूक्तों को बालखिल्य सूक्तों में प्रथम 7-सूक्तों में स्थान दिया गया है।

3) आश्वलायन—

यह संहिता और इसका ब्राह्मण संप्रति उपलब्ध नहीं है। इस शाखा के श्रौतसूत्र और गृह्यसूत्र ही उपलब्ध हैं।

4) शाखायन—

यह शाखा उपलब्ध नहीं है इसके ब्राह्मण, आरण्यक, श्रौतसूत्र और गृह्यसूत्र ही प्राप्त हैं।

5) मांडूकायन—

यह शाखा संप्रति प्राप्त किया है।

यजुर्वेद की शाखाएं

यजुर्वेद की 100 शाखाएं हैं। महर्षि पतंजलि ने महाभाष्य में एकशतमध्वर्यु शाखा: (आह्निक 1) कहा है, अर्थात् यजुर्वेद की 100 शाखाएं हैं। षड्गुरु शिष्य की सर्वानुक्रमणी की वृत्ति में यजुरेकशताध्वकम्। (षड्गुरु शिष्य सर्वानुक्रमणी) तथा कूर्म पुराण में भी यजुर्वेद की 100 शाखाओं का उल्लेख मिलता है। शाखानां तु शतेनाथ यजुर्वेदमथाकरोत्। (कूर्म० 49/51)। परंतु चरणव्यूह में यजुर्वेद की 86 शाखाओं का ही उल्लेख मिलता है। इनका संक्षिप्त वर्गीकरण एवं विवरण इस प्रकार है (क) चरक शाखा 12, (ख) मैत्रायणी 7, (ग) वाजसनेय 17, (घ) तैत्तिरीय 6, (ङ) कठ 44। चरणव्यूह में कठ की 44 शाखाओं का नाम निर्देश नहीं है। इससे प्रतीत होता है कि यजुर्वेद की शाखाएं क्रमशः लुप्त होती जा रही थी और चरण व्यूह के समय में केवल 42 शाखाएं ही उपलब्ध थीं। कठ शाखा के 44 ग्रंथों एवं उनके लेखकों के नाम भी लुप्त हो चुके थे। संप्रति केवल 6 शाखाएं ही उपलब्ध हैं। दो शुक्ल यजुर्वेद की तथा चार कृष्ण यजुर्वेद की।

शुक्ल यजुर्वेद की दो शाखाएं हैं उनकी एक-एक संहिताएं उपलब्ध हैं। पहली माध्यनदिन या वाजसनेयि संहिता और दूसरी काण्व संहिता

1) माध्यनदिन या वाजसनेयी संहिता—

इसमें 40 अध्याय और 1975 मंत्र हैं। अतः यजुर्वेद के संदर्भ में केवल दो संख्याएं रहती हैं एक अध्याय की और दूसरी मंत्र की जैसे—ईशा वास्यम् यह मंत्र (यजुर्वेद 40.1) अर्थात् यह 40 वें अध्याय का प्रथम मंत्र है। शतपथ ब्राह्मण में यजुर्वेद के अक्षरों की संख्या 2,88,000 (दो लाख 88 हजार) दी गई है, अर्थात् 8036 अक्षर वाला बृहती छंद।

2) काण्व संहिता

इसमें भी 40 अध्याय हैं और मंत्र संख्या 2086 है, अर्थात् वाजसनेयी संहिता में 111 मंत्र अधिक है। इसका विभाजन अध्याय अनुवाक और मंत्र के रूप में हुआ है। अध्याय 40 अनुवाक 328 और मंत्र 2086 हैं। इसमें मंत्रों के क्रम में भी अन्तर मिलता है। महर्षि कण्व का उल्लेख ऋग्वेद में भी है। मंडल (1/8) और (9) में अनेक सूक्तों के द्रष्टा कण्व और उसके वंशज हैं। आदित्य पुराण के अनुसार कण्व के पिता बोधायन थे और याज्ञवल्क्य उनके गुरु थे।

बोधायनदृ पितृत्वाच्च प्रशिष्यत्वात् बृहस्पतेः।

शिष्यत्वाद् याज्ञवल्क्यस्य कण्वोऽभून्महतो महान्।।

महर्षि कण्व इस शाखा के प्रवर्तक हैं। श्री सातवलेकर ने वाजसनेयी संहिता के साथ ही काण्वभेद परिशिष्ट के रूप में दिए हैं। श्री सातवलेकर ने काण्व संहिता का पृथक् संस्करण भी प्रकाशित किया है। वैदिक संशोधन मंडल पुणे तथा संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी ने भी इसके संस्करण प्रकाशित किए हैं। आजकल काण्व संहिता का प्रचार महाराष्ट्र में ही है और माध्यन्दिन का उत्तर भारत में। काण्व शाखा का प्रचार प्राचीन काल में उत्तर भारत में भी था। काण्व संहिता (1.1.3.3) में कुरु पाञ्चालों का उल्लेख प्राप्त होता है। महाभारत आदिपर्व (63.18) के अनुसार शकुंतला के धर्मपिता महर्षि कण्व का मालिनी नदी (संप्रति बिजनौर जिले में कोटद्वार के पास मालन नदी) के तट पर आश्रम था। कण्व का उत्तर प्रदेश से साक्षात् संबंध रहा।

सामवेद की शाखाएं

महाभाष्य में पतंजलि ने सहस्रवर्त्मा सामवेदः (महाभाष्य 1आह्निक) कहा है। इसी प्रकार सहस्रत्राध्वा सामवेद (षड्गुरु शिष्य द्वारा चरणव्यूह से उद्धृत) भी कहा गया है। इनका अर्थ यह लगाया गया है कि सामवेद की एक सहस्र शाखाएं थी परंतु 'वर्त्मन्' और 'अध्वन्' का वस्तुतः शाखा अर्थ नहीं है, अपितु यह गीति के एक सहस्र भेदों का संकेत करता है। सामवेद के एक मंत्र से इस बात की पुष्टि होती है। मंत्र में सहस्रवर्त्तनि शब्द का प्रयोग करते हुए कहा गया है कि मैं गायत्री, त्रिष्टुप् और जगती छन्द वाले मंत्रों को सहस्र प्रकार से गाता हूं। मंत्र में वर्तनी शब्द का अर्थ प्रकार, मार्ग या भेद है।

गाये सहस्रवर्त्तनि। गायत्रं त्रैष्टुभं जगत्।

मीमांसा सूत्र—अर्थकत्वाद् विकल्पः स्यात् पर शबरस्वामी ने अपने भाष्य में कहा है कि सामवेदे सन्ति सहस्रं गीत्युपाया अर्थात् सामवेद में सहस्रों प्रकार के गानों की विधियां हैं। श्री सत्यव्रत सामश्रमी और श्री सातवलेकर आदि ने भी यही मंतव्य उपयुक्त बताया है। इस की पुष्टि इस बात से भी होती है कि 'सामतर्पण' में केवल 13 सामवेदी आचार्यों को स्मरण किया जाता है। यदि 13 से अधिक शाखाकार होते तो उनका सामतर्पण में या अन्यत्र उल्लेख मिलता। सामतर्पण में इन 30 शाखाकारों का उल्लेख मिलता है। राणायन—शाट्यमुग्य—व्यास—भागुरि—औलुण्डी—गौल्गुलवि—भानुमौपमन्यव—काराटि—मशकगार्ग्य—वार्षगव्य—कथुम—शालिहित्र—जैमिनि—त्रयोदश—त्रयोदशैते मे सामगाचार्याः स्वस्ति कुर्वन्तु तर्पिताः। (सामतर्पण)।

1—राणायण (राणायनि), 2— शाट्यमुग्रय (सात्यमुग्री), 3— व्यास, 4— भागुरि, 5—औलुण्डी, 6— गौल्गुलवि, 7— भानुमान् औपमन्यव, 8— काराटि (दराल), 9— मशक

क) कौथुमीय (कौथुम) शाखा

आजकल यही शाखा सर्वत्र प्रचलित है। संहिता की दृष्टि से कौथुमीय और राणायनीय संहिताओं में कोई मौलिक भेद नहीं है। दोनों में वे ही मंत्र हैं और उनका क्रम भी वही है। दोनों में केवल गणना पद्धति का अन्तर है, कौथुमीय शाखा का विभाजन अध्याय, खण्ड, दशती और मंत्र के रूप में है। श्री सातवलेकर ने सामवेद संहिता के अपने संस्करण में दोनों पद्धतियों का साथ साथ उल्लेख किया है। दोनों पद्धतियों में स्वरों के उच्चारण में भेद हैं तथा कहीं कहीं पाठभेद भी हैं। जैसे जैमिनीय 'हाउ' कहते हैं और राणायनीय उसमें 'व्' और जोड़कर 'हावु' कहते हैं। इसी प्रकार राइ को राणायनीय उसमें य जोड़कर रायि बोलते हैं। पाठ भेद की दृष्टि से कौथुमीय 'वाजेषु' नो और राणायनीय वाजेषु णो पाठ करते हैं। इस प्रकार दो स्वरों के बीच य् या व् जोड़ना तथा वर्तनी में न को ण और स को ष पाठभेद राणायनीय शाखा में है।

ख) राणायनी शाखा

कौथुमीय और राणायनीय शाखाओं के मंत्रों तथा उनके क्रम में कोई भेद नहीं है। केवल गणना की विधि में अंतर है। राणायनीयों के अनुसार विभाजन प्रपाठक, अर्धप्रपाठक दशती और मंत्र के रूप में है। पाठभेद और कुछ उच्चारणभेद अवश्य हैं। इनका संकेत ऊपर किया गया है। राणायनीयों को ही एक शाखा सत्यमुग्री है। पतंजलि ने महाभाष्य में तथा आचार्य आपिशलि ने सत्यमुग्री और राणायनीयों की एक महत्वपूर्ण भाषा वैज्ञानिक विशेषता बताई है कि वे ए और ओ के दो रूप मानते हैं। 1—शुद्ध ए, ओ । 2— ह्रस्व ए, ओ । ह्रस्व ए, ओ, को अर्थ ए,ओ,भी कहते हैं, इसमें ए, ओ, का बहुत हल्का उच्चारण होता है। भाषाविज्ञान की दृष्टि से यह बहुत महत्वपूर्ण विचार माना जाता है। प्राकृत में और आधुनिक प्रान्तीय भाषाओं में ए और ओ का उच्चारण ह्रस्व भी किया जाता है। इस शाखा का विशेष प्रचार दक्षिण भारत में रहा है।

ग) जैमिनीय शाखा

सामवेद की जैमिनीय शाखा भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसकी संहिता डॉ० रघुवीर ने लाहौर से प्रकाशित की थी। श्री सातवलेकर ने सामवेद संहिता के परिशिष्ट में जैमिनी शाखा के पाठ भेदों का पूर्ण विवरण दिया है कि कौथुम शाखा में 1875 मंत्र हैं और जैमिनीय में 1687। इससे ज्ञात होता है कि जैमिनीय शाखा में 188 मंत्र कम हैं। जैमिनीय शाखा के उत्तरार्चिक में अनेक मंत्र ऐसे हैं जो कौथुमीय शाखा में उपलब्ध नहीं हैं। यद्यपि जैमिनीय शाखा में कौथुम से मंत्रों की संख्या कुछ कम है, तथापि सामगान की दृष्टि से जैमिनीय शाखा अधिक समृद्ध है। कौथुमीय गान केवल 2722 है, परन्तु जैमिनीय गानों की संख्या 3681 हैं, अर्थात् 959 गान अधिक। जैमिनीय शाखा इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि इसकी संहिता, ब्राह्मण, श्रौतसूत्र और गृह्यसूत्र सभी उपलब्ध हैं। इसकी एक अवान्तर शाखा तवलकार है, जिससे संबद्ध प्रसिद्ध केनोपनिषद् है तवलकार श्री जैमिनी के शिष्य माने जाते हैं।

अथर्ववेद की शाखाएं

चरणव्यूह ग्रंथ के अनुसार अथर्वसंहिता की नौ शाखाएँ हैं— 1. पैपल, 2. दान्त, 3. प्रदान्त, 4. स्नात, 5. सौल, 6. ब्रह्मदाबल, 7. शौनक 8. देवदर्शत और 9. चरणविद्या

वर्तमान में केवल दो शाखाओं की जानकारी मिलती है— 1. जिसका शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये..... इत्यादि है वह पिप्पलाद संहिताशाखा तथा 2. ये त्रिशप्ता परियन्ति विश्वारूपाणि विभ्रत ३. इत्यादि पहला मन्त्रवाला शौनक संहिता शाखा जिसमें से शौनक संहिता ही उपलब्ध होती है, वैदिक विद्वानों के अनुसार 759 सूक्त ही प्राप्त होते हैं 6000 मन्त्र होने का उल्लेख मिलता है परन्तु 5987 या 5977 मन्त्र ही मिलते हैं.

अथर्ववेद के विषय में कुछ मुख्य तथ्य—

- अथर्ववेद की भाषा और स्वरूप के आधार पर ऐसा माना जाता है कि इस वेद की रचना सबसे बाद में हुई
- वैदिक धर्म की दृष्टि से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद चारों का बड़ा ही महत्व है.
- अथर्ववेद से आयुर्वेद में विश्वास किया जाने लगा था, क्योंकि अनेक प्रकार की चिकित्सा पद्धतियों का वर्णन अथर्ववेद में है, अथर्ववेद गृहस्थाश्रम के अंदर पति पत्नी के कर्तव्यों तथा विवाह के नियमों, मान मर्यादाओं का उत्तम विवेचन करता है, अथर्ववेद में ब्रह्म की उपासना संबन्धी बहुत से मन्त्र हैं

2.5 संहिताओं का महत्व

ऋग्वेद संहिता का महत्व

चारों वेदों में ऋग्वेद सबसे अधिक महत्वपूर्ण और सम्माननीय माना जाता है। इसके महत्व के कुछ विशेष कारण हैं क्योंकि ऋग्वेद अति प्राचीन है। विश्व के सभी विद्वान् इसको विश्व का सबसे प्राचीन ग्रन्थ मानते हैं। भाव भाषा और छन्द की दृष्टि से यह सबसे प्राचीन है। इसमें अधिकांश देव इन्द्र, विष्णु, मरुत् आदि प्राकृतिक तत्वों के प्रतिनिधि हैं। ये पंचतत्त्वों अग्नि, वायु आदि तथा सूर्य, मेघ, विद्युत् आदि का प्रतिनिधित्व करते हैं। सभी वेदों और ब्राह्मण ग्रन्थों आदि में ऋग्वेद का ही नाम सर्वप्रथम लिया गया है। तैत्तिरीय संहिता का कथन है कि जो कार्य साम और यजुः के द्वारा किया जाता है। वह शिथिल होता है और जो ऋक् के द्वारा किया जाता है, वह दृढ और पुष्ट होता है। यह आकार की दृष्टि से चारों वेदों में सबसे बड़ा ग्रन्थ है।

संवाद सूक्त अर्थात् वे सूक्त, जिनमें दो या दो से अधिक देवताओं, ऋषियों या किन्हीं ओर के मध्य वार्तालाप की शैली में विषय को प्रस्तुत किया गया हो। वेदों में विभिन्न सूक्तों के माध्यम से विभिन्न देवताओं की स्तुति तथा विभिन्न विषयों को प्रस्तुत किया गया है। उनमें कुछ सूक्त, संवाद-सूक्त के नाम से जाने जाते हैं। प्रमुख संवाद सूक्त ऋग्वेद में प्राप्त होते हैं। संवाद सूक्तों की व्याख्या और तात्पर्य वैदिक विद्वानों का एक विचारणीय विषय रहा है: क्योंकि वार्तालाप करने वालों को मात्र व्यक्ति मानना सम्भव नहीं है। इन आख्यानों और संवादों में निहित तत्वों से उत्तरकाल में साहित्य की कथा और नाटक विधाओं की उत्पत्ति हुई है।

यजुर्वेद का महत्व

यजुर्वेद कर्म का विषय है, इसमें कर्मों को विधिवत् करने के लिए आदेश दिया गया है कि किस प्रकार से यज्ञविधियों का विधान किया जाये। ऋग्वेद वैज्ञानिक सिद्धान्तों का परीक्षण करता है और यजुर्वेद उनके साधनों को और उपकरणों के तैयार करने की प्रक्रिया यजुर्वेद में बतायी जाती है।

यजुर्वेद यज्ञ प्रधान है। शतपथ ब्राह्मण में यजुष् का निर्वचन यज् धातु से दिया गया है, जो कि देव पूजन, संगतिकरण, और दान इन अर्थों से निहित है। यजुर्वेद में यज्ञों को असाधारण महत्व दिया गया है। इन यज्ञों से आवश्यकतानुसार वृष्टि, समृद्धि और मनोवाञ्छित फल की प्राप्ति बताई गई है। देवों का स्वरूप भी विकसित हो गया है। प्रजापति को मुख्य देवता माना गया है। रुद्र, शिव, शंकर आदि अनेक देवों से प्रार्थना की गयी है। यज्ञ को ही विष्णु रूप माना गया है यज्ञो वै विष्णुः। वर्णव्यवस्था का भी वर्णन मिलता है। कुछ अध्यायों में राजा का महत्व, राजा के अधिकार और कर्तव्यों का विस्तृत वर्णन है राष्ट्र की श्रीवृद्धि, राष्ट्र का सर्वाङ्गीण विकास, स्वराज्य का आदेश—‘स्वराजस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम् अमुष्मै दत्त।’ वैज्ञानिक तथ्य भी कुछ अध्यायों में वर्णित हैं। ३२ वें अध्याय में विराट् पुरुष का वर्णन है। इसी विराट् पुरुष से सृष्टि की उत्पत्ति हुई है। उससे ही ब्राह्मण आदि चारों वर्ण उत्पन्न हुए हैं, उसके ज्ञान से मुक्ति मिलती है। वह सर्वव्यापक है। वह एक है। उसके ही अग्नि, वायु, रुद्र, सूर्य, ब्रह्म आदि अनेक नाम हैं। उसमें ही सारा संसार समाहित है। वही संसार में ओत प्रोत है। उसके ज्ञान से ही व्यक्ति ब्रह्मवित् या तत्त्वज्ञ होता है।

सामवेद का महत्व

वेदों में सामवेद के महत्व का प्रमुख सामूहिक वेदों का सार है शतपथ और गोपथ ब्राह्मण का कथन है कि सारे वेदों का रस व्यापार सामवेद में है ‘सर्वेषां वा एष वेदानां रसो यत् साम’ (शतपथ ब्रा०) सामवेद के बिना यह अपूर्ण है नासामा यज्ञोऽस्ति। शतपथ ब्राह्मण का कथन है कि साम गान के बिना यज्ञ पूर्ण नहीं होता है। सामवेद में सौर ऊर्जा है शपथ का कथन है कि सूर्य से सामवेद की उत्पत्ति हुई है अतः यह सूर्यपुत्र है इसमें सूर्य की शक्ति है। सूर्यात् सामवेदः (अजायत)। सामवेद का सार (रस) द्युलोक है। जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण का कथन है कि प्रजापति ने सामवेद का रस (सार) लेकर द्युलोक की रचना की। वही रस सूर्य के रूप में हुआ। स्वरित्येव सामवेदस्य रसमादत्त। सोऽसौ द्यौरभवत्तस्य.....आदित्यः। (जै० उप० ब्रा०)। जैमिनी उपनिषद् ब्राह्मणा का कथन है कि प्रजापति ने सामवेद का रस (सार) लेकर द्युलोक की रचना की। वही रस सूर्य के रूप में हुआ। वृहद् देवता का कथन है कि जो सामवेद को जानता है, वही वेद के रहस्य को जानता है, गीता में श्रीकृष्ण ने सामवेद को सर्वोच्च स्थान दिया है और उसे परमात्मा का रूप माना है। वेदानां सामवेदोऽसि। (गीता 10.22) छांदोग्य उपनिषद् में ऋचाओं का सार सामवेद बताया गया है और सामवेद सार उद्गीथ (प्रणव ओंकार ओम्)। इस उद्गीथ को संसार का सबसे बहुमूल्य रस बताया गया है। इस प्रकार सामवेद ओम् (परमात्मा) का प्रतिपादन करता है। सामवेद गीतिमय संगीत का वेद है। संगीत संसार की सर्वश्रेष्ठ विद्या है अतः चारों वेदों में सामवेद का गुणगान है। सामवेद का गान करने वाले को सामग कह कर उसकी प्रशंसा की गई है (सामगेभिः अथर्व० 2.12.4) सामवेद जागरुकता का प्रतीक है अतएव ऋग्वेद में कहा गया है कि जो जागरुक है उसको ही ऋग्वेद और सामवेद पसंद करते हैं यो जागार तमृचः कामयन्ते तमु सामानि यन्ति। (ऋ० 5.44.14)। साम गान देव स्तुति और देवों को प्रसन्न करने का सर्वोत्तम उपाय है। शुद्ध हृदय से किया गया साम गान सभी वेदों को आकृष्ट कर लेता है। इसीलिए ऋग्वेद में कहा गया है कि शुद्ध मन से सामगान करें। ‘इन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना’। (ऋ० 8.95.7) सामवेद का गौरवमयी गान वेदों में ही नहीं अपितु परवर्ती साहित्य में भी किया गया है। छांदोग्य उपनिषद् में उस गीत को इसके रथ का सार कहकर साम का वर्णन किया गया है।

अथर्ववेद में मुख्यतः रोगों तथा उनके उपचार का प्रभूत वर्णन है।

आयुर्वेद का मूल स्रोत अथर्ववेद को माना जाता है। अतः

आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रंथ स्रोतों में आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपवेद बताया गया है। यज्ञ में जो ब्रह्मा के पद पर प्रतिष्ठित होता है वह अथर्व वेद का विशिष्ट ज्ञाता होता है। ब्राह्मण ग्रंथों में लिखा है— “ऋग्वेदेन होता करोति यजुर्वेदेन अध्वर्युः सामवेदेनोद्गाता अथर्वैः वा ब्रह्मा” अर्थात् ऋग्वेद से होता यजुर्वेद से अध्वर्यु, सामवेद से उद्गाता और अथर्ववेद से ब्रह्म की नियुक्ति करें। वस्तुतः ऋग्वेद से अथर्ववेद तक चारों वेदों को जानने वाला ब्रह्मा होता है जो अथर्ववेद के अस्तित्व और महत्व को स्पष्ट करता है अतः अथर्ववेद का चतुर्थ स्थान किसी भी प्रकार से कम नहीं है। चारों वेदों की तुलना में महत्व हीनता प्रकट नहीं करता है। यह केवल क्रम को बताता है। त्रयी विद्या के पश्चात् उन तीन विद्याओं के मिश्रित रूप को चतुर्थ पद से अभिहित किया गया है। जैसे गद्य को यजुः पद्य को ऋक् तथा गीति को साम कहा जाता है। तदनुसार यजुर्वेद में भी जो छन्दोबद्ध मंत्र आते हैं, वे ऋक् कहलाते हैं। गान सर्वत्र साम के अंतर्गत आता है यही तीन वेद मानने की उत्पत्ति है। कुछ लोग अथर्ववेद की प्राचीनता पर प्रश्नचिन्ह उठाते हैं लेकिन ऐसा ठीक नहीं है क्योंकि जयंत भट्ट ने ‘न्यायमंजरी’ में अथर्ववेद को प्रथम वेद माना है—तत्र वेदश्चत्वारः प्रथमोऽथर्ववेदः। नागर खंड भी इसे आद्यवेद बताते हुए कहते हैं कि सार्वलौकिक कार्य सिद्धि में अथर्व ही मुख्य रूप में प्रयुक्त होता है। इसी क्रम में पाश्चात्य विद्वान विंटरनिट्स महोदय अथर्ववेद की प्राचीनता के विषय में लिखते हैं कि यदि अथर्ववेद का कुछ अंश ऋग्वेद के अधिकांश से परतर है तो कुछ समकालीन ही नहीं पूर्वतर भी हो सकते हैं और संभवतया अथर्ववेद के कितने ही प्रकरण ऋग्वेद के प्राचीन यज्ञ प्रसंगों की भांति धुंधले और दुर्बोध हैं। इस बात की प्रमाणिकता अथर्ववेद के कुछ अंश से ही प्राप्त की जा सकती है अथवा परतर न होकर संभवतया प्राचीनतर हो। इन समस्त वक्तव्यों के आधार पर भेद के वेदत्व तथा प्राचीनत्व पर प्रश्नचिन्ह नहीं लगाया जा सकता।

विशेषताएँ

- इसमें ऋग्वेद और सामवेद से भी मन्त्र लिये गये हैं।
- जादू से सम्बन्धित मन्त्र—तन्त्र, राक्षस, पिशाच, आदि भयानक शक्तियाँ अथर्ववेद के महत्वपूर्ण विषय हैं।
- इसमें भूत—प्रेत, जादू—टोने आदि के मन्त्र हैं, ऋग्वेद के उच्च कोटि के देवताओं को इस वेद में गौण स्थान प्राप्त हुआ है। धर्म के इतिहास की दृष्टि से ऋग्वेद और अथर्ववेद दोनों का बड़ा ही मूल्य है।
- अथर्ववेद से स्पष्ट है कि कालान्तर में आर्यों में प्रकृति की पूजा की उपेक्षा हो गयी थी।

2.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई में चारों वेद संहिताओं का परिचय एवं वेदों की विषयवस्तु के आधार पर विभाजन, वेद संहिताओं की शाखाओं का वर्णन और वेद शाखाओं का महत्व उपस्थापित किया गया है।

वेद अमूल्य शिक्षाओं और उपदेशों के भण्डार हैं। इनमें परमात्मा ने संसार के शाश्वत और अपरिवर्तनीय सिद्धान्तों का ज्ञान मनुष्यों के कल्याणार्थ प्रकट किया है जो उसको हृदयङ्गम करके तदनुकूल आचरण, व्यवहार करेगा वह लोक, परलोक में कल्याण को प्राप्त कर सुख पायेगा। वेदों में नैतिक आदर्श पदे-पदे व्याप्त हैं। मनुष्य यदि एक भी आदर्श पर चले तो जीवन सफल कर लेगा।

सामवेद सूर्य है और सामवेद के मंत्र सूर्य की किरणें हैं, अर्थात् सामवेद से सौर ऊर्जा मनुष्य को प्राप्त होती है।

जिस समय वैदिक धर्म और वैदिक संस्कृति पर चारों ओर से भीषण कुठाराघात हो रहे थे, भारतीय सभ्यता और संस्कृति पर अन्धकार की घनघोर घटाएँ छाई हुई थीं, उस समय उन अविद्या अन्धकार की घटाओं को चीरते हुए एक दिव्यलोक का प्रकाश बिखेरते हुए महर्षि दयानन्द भारतीय रंगमंच पर अवतीर्ण हुए। महर्षि दयानन्द ने वेद के गम्भीर अध्ययन, मनन और चिन्तन के पश्चात् जोरदार शब्दों में एक घोषणा की— 'वेदों की ओर लौटो' उन्होंने सिंह-गर्जना करते हुए कहा—'वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है।'

महर्षि दयानन्द के भाष्य को पढ़कर उन्हें अपनी श्रद्धाञ्जलि प्रस्तुत करते हुए योगी अरविन्द घोष ने कहा था—

“In the matter of Vedic interpretation, I am convinced that whatever may be the final complete interpretation, Dayananda will be honoured as the first discoverer of the right clues-

Amidst the chaos and obscurity of old ignorance and age long misunderstanding he was the eye of direct vision that pierced to the truth and fastened on to that which was essential- He has found the keys of the doors that time had closed and broke the seals of the imprisoned fountains-“

अर्थात् वैदिक व्याख्या के विषय में मेरा यह विश्वास है कि वेदों की सम्पूर्ण अन्तिम व्याख्या चाहे कोई भी हो, दयानन्द का, उपयुक्त शैली के प्रथम आविष्कारक के रूप में सदा सम्मान किया जाएगा। पुराने अज्ञान और पुराने युग की मिथ्याज्ञान की अव्यवस्था और भ्रम के मध्य में यह उसी की दिव्य दृष्टि थी, जिसने सत्य का अन्वेषण कर उसे वास्तविकता के साथ बाँध दिया। जिन वेदों के द्वार को समय ने बन्द कर रखा था उनकी चाभियों को उसने पा लिया और बन्द पड़े हुए स्रोत की मुहरों को तोड़कर फेंक दिया।

वेद की प्रशंसा करते हुए स्वामी विवेकानन्द जी लिखते हैं—

“वेदों के सम्बन्ध में हिन्दुओं की यह धारणा है कि वे प्राचीन काल में किसी व्यक्तिविशेष की रचना अथवा ग्रन्थमात्र नहीं हैं। वे उसे ईश्वर की अनन्त ज्ञानराशि मानते हैं, जो किसी समय व्यक्त और किसी समय अव्यक्त रहती है। टीकाकार सायणाचार्य ने एक स्थान पर लिखा है, 'यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् निर्ममे'—जिसने वेदज्ञान के प्रभाव से सारे जगत् की सृष्टि की है। वेद के रचयिता को कभी किसी ने नहीं देखा। इसलिए इसकी कल्पना करना भी असम्भव है। ऋषि लोग उन मन्त्रों अथवा शाश्वत नियमों के मात्र अन्वेषक थे। उन्होंने आदिकाल से स्थित ज्ञानराशि वेदों का साक्षात्कार किया था। ये वेद ही हमारे एकमात्र प्रमाण हैं और इन पर सबका अधिकार है। क्या तुम हमें वेद में ऐसा कोई प्रमाण दिखला सकते हो, जिससे यह सिद्ध हो जाए कि वेद में सबका अधिकार नहीं है?

वेद के सम्बन्ध में विदेशी विद्वान् मैक्समूलर ने वेद की प्रशंसा करते हुए लिखा—

संहिता परिचय

Whatever the Veda*s may be called they are to us unique and priceless guides in opening before our eyes tombs of thought richer in relics than the royal tombs of Egypt and more ancient and primitive in thought than the oldest hymns of Babylonian and Acadian poets-

Systems of Indian Philosophy Page 34

अर्थात् वेद चाहे जो कुछ भी हों वे हमारे लिए अद्वितीय और बहुमूल्य मार्गदर्शक हैं क्योंकि वे हमारे समक्ष विचारों की ऐसी राशि प्रस्तुत करते हैं जो मिस्र के राजकीय स्मारक चिन्हों से कहीं अधिक श्रेष्ठ हैं। वेद बेबीलोनियन और अकेडियन कवियों की प्राचीनतम कविताओं से बहुत प्राचीन हैं।

एक अन्य स्थान पर उन्होंने लिखा—

The Rigved is the most ancient book of the Aryan the sacred hymns of the Brahmans stand unpatrolled in the literature of the whole world and their preservation might be called miraculous-

अर्थात् ऋग्वेद आर्यजगत् की प्राचीनतम पुस्तक है। ब्राह्मणग्रन्थों की ऋचाएँ संसार के साहित्य में अपूर्व हैं तथा उनके संरक्षण की विधि को अद्भुत कहा जा सकता है।

इतना ही नहीं उन्होंने वेद को ईश्वरीय ज्ञान भी स्वीकार किया। उन्होंने लिखा—

If there is a God who has created heaven and earth] it will be unjust on his part if he deprives millions of souls born before Moses of his divine knowledge- Reason and comparative study of religions declare that God gives his divine knowledge to mankind from his first appearance on earth - and Science of Religion

द्युलोक और पृथ्वीलोक का निर्माता यदि कोई ईश्वर है तो यह उसके लिए अन्यायपूर्ण बात होगी यदि वह मूसा से पूर्व उत्पन्न लोगों को अपने दिव्यज्ञान से वञ्चित रखता है। तर्क और धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन से यह बात स्पष्ट है कि प्रभु मनुष्य के पृथ्वी पर प्रादुर्भाव के समय ही उसे अपना दिव्यज्ञान प्रदान करता है।

उपर्युक्त तथ्यों से ज्ञात होता है कि वेद हमारे संस्कार, खान पान, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक सभी प्रकार की विद्याओं से भरपूर हैं व प्रत्येक ज्ञान प्रदाता हैं। हमें उनसे विद्या ग्रहण कर जनजन तक पहुंचाने चाहिए।

2.8 बोध प्रश्न / उत्तर अभ्यास प्रश्न/ उत्तर

बोध प्रश्न (A) अधोलिखित प्रश्नों के सही उत्तरों पर (✓) का चिन्ह लगाइये

- वर्णों के अत्यन्त सन्निकर्ष को कहते हैं
क) संहता (ख) गुण (ग) संहिता (घ) गति।
- ऋग्वेद संहिता में कितने सूक्त हैं
(क) 1028 (ख) 1026 (ग) 9025 (घ) 8028।
- ऋग्वेद में ऋचाओं की संख्या है

(क) 90581 (ख) 90582 (ग) 100581 (घ) 20581 ।

4. कौनसी ऐसी संहिता है जिसकी समस्त ऋचाओं की रचना चौदह छन्दों में है ।

(क) सामवेद (ख) ऋग्वेद (ग) अथर्ववेद (घ) यजुर्वेद ।

5. जिन मन्त्रों के द्वारा यज्ञ किया जाता है उन्हें कहते हैं

(क) यजुष् (ख) साम (ग) अथर्व (घ) ऋग् ।

6. वेद संहिताओं में प्राण किस संहिता को कहा गया है ।

(क) साम (ख) यजुष् (ग) अथर्व (घ) ऋग् ।

B) अभ्यास प्रश्न

निम्नलिखित अभ्यास में रिक्त स्थान को पूरित कीजिए

1. या तत् साम ।
2. ऋचां..... पोषमास्ते पुपुष्वान् ।
3. वै विष्णुः ।
4. वेदानां असि ।
5. तत्र वेदः प्रथमोऽथर्ववेदः
6. वा ब्रह्मा
7. यो तमृचः कामयन्ते ।

C) अभ्यास प्रश्न

1. वैदिक साहित्य का अपने शब्दों में परिचय दीजिए ।
2. वेद संहिताओं के महत्व को बताते हुए एक लघु निबन्ध लिखिए ।
3. ऋग्वेद संहिता का विभाजन बतायें ।
4. अथर्ववेद संहिता की शाखाओं का वर्णन कीजिए ।
5. सामवेद संहिता के महत्व पर प्रकाश डालिए ।

A) अभ्यास प्रश्न के उत्तर

1. (ग) संहिता
2. (क) 1028
3. (ग) 100581
4. (ख) ऋग्वेद
5. (क) यजुष्
6. (क) साम

B) अभ्यास प्रश्न के उत्तर

.ऋक् । 2. त्वः । 3. यज्ञो 4. सामवेदः । 5. चत्वारः । 6. अथर्वैः । 7. जागार ।

इकाई 3 ब्राह्मण परिचय तथा प्रमुख ब्राह्मण

इकाई की रूपरेखा

- 3.0 प्रस्तावना
- 3.1 उद्देश्य
- 3.2 ब्राह्मण ग्रन्थों का रचना काल और स्थान –
- 3.3 ब्राह्मण ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय।
- 3.4 ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रतिपाद्य विषय।
- 3.5 ब्राह्मण कालीन समाज।
- 3.6 ब्राह्मण ग्रन्थों का महत्व।
- 3.7 ब्राह्मण ग्रन्थों का सारांश
- 3.8 शब्दावली
- 3.9 बोध प्रश्न/उत्तर / अभ्यास प्रश्न/उत्तर

3.0 प्रस्तावना

इस इकाई में ब्राह्मण ग्रन्थों का परिचय दिया गया है। ब्राह्मण किसे कहते हैं, किस किस वेद के कितने ब्राह्मण हैं और उनका वर्ण्य विषय क्या है। ब्राह्मणों का महत्व तथा उनके काल का सामाजिक अध्ययन। सांस्कृतिक परिवेश एवं नैतिक आदर्शों का विशिष्ट महत्व दर्शाया गया है।

3.1 उद्देश्य

विद्यार्थियों को वैदिक वाङ्मय में निहित ब्राह्मण ग्रन्थों के इतिहास से अवगत कराना। ब्राह्मणग्रन्थों के अध्ययन से वेदों के अर्थों को आप अच्छी प्रकार से समझ सकते हैं। क्योंकि ये वेदों के ही व्याख्या ग्रन्थ हैं। ये अपने प्रमाण में वेदों को ही उद्धृत करते हैं। कई विद्वान् तो इन्हें वेदों के समकक्ष ही मानते हैं।

3.2 ब्राह्मण ग्रन्थों का रचना स्थान और काल

ब्राह्मण का अर्थ –

‘ब्राह्मण’ शब्द के भिन्न भिन्न अर्थ किए गए हैं, जो इस प्रकार हैं

- क) ‘ब्राह्मण’ शब्द बृहू वर्धने से निष्पन्न है जिसका अर्थ है ‘बढ़ाना’। अधिकांश विद्वानों का यह मत है कि ब्राह्मण उन ग्रन्थों का नाम है जो वेदों में प्रतिपादित यज्ञ विधियों का विस्तार से वर्णन करते हैं ‘ब्राह्मणं नाम कर्मणस्तन्मन्त्राणां व्याख्यान ग्रन्थः’।
- ख) ‘ब्रह्मन्’ का अर्थ मन्त्र भी है। तदनुसार ब्राह्मण का अर्थ होगा ‘मन्त्रों की व्याख्या करने वाले एवं उनका विनियोग देने वाले ग्रन्थ’।

- ग) आपस्तम्ब ऋषि ने ब्राह्मणों की 'कर्मचोदना ब्राह्मणानि' अर्थात् जिनमें वेदविहित कर्मकाण्ड का यथावत् प्रतिपादन किया गया है' यह परिभाषा दी है।
- घ) कुछ विद्वानों के अनुसार ब्राह्मण वे विद्वान् थे जो ब्राह्मण जाति के थे और उनके सङ्कलित विचार ही ब्राह्मण ग्रन्थ हैं।
- ङ) महाभाष्यकार पतञ्जलि ने ब्रह्मन् और ब्राह्मण शब्द का एक ही अर्थ माना है 'समानार्थावेतौ ब्रह्मन् शब्दो ब्राह्मणशब्दश्च' (महाभाष्य 5-1-1)। यह अर्थ स्वीकार कर लेने पर 'ब्राह्मण' का अर्थ 'चारों वेदों को जानने वाले ब्राह्मणों के द्वारा किया वेद का व्याख्यान' होगा। वस्तुतः ब्राह्मण शब्द का अर्थ है "यज्ञ के विविध विधानों में पूर्ण निपुणता रखने वाले पुरोहित वर्गों के द्वारा यज्ञों के अनुष्ठान के अवसर पर प्रयोग में लाई जाने वाली संहिता भाग की विधियों की व्याख्या का सङ्कलन"। यही अर्थ सबसे अधिक समीचीन व उपयुक्त प्रतीत होता है क्योंकि यह ब्राह्मण ग्रन्थों के मुख्य वर्ण्य विषय को अपने अन्दर समाहित करता है। ब्राह्मणों का मुख्य विषय है यज्ञ सम्बन्धी नियमों, विधियों तथा विनियोगों की विस्तृत विवेचना। ये ब्राह्मण ग्रन्थ मन्त्रों और प्रार्थनाओं के साथ याज्ञिक कर्मों का पारस्परिक सम्बन्ध जोड़ते हुए स्वतन्त्र रूप में विधि विधानों का निर्देश करते हैं। वाचस्पति मिश्र के अनुसार—ब्राह्मण ग्रन्थों का वर्ण्य विषय निरुक्ति, मन्त्रों का विनियोग, अर्थवाद (प्रतिष्ठान) और विधि बतलाना है जैसा कि कहा गया है "नैरुक्त्यं यस्य मन्त्रस्य विनियोगः प्रयोजनम्। प्रतिष्ठानं विधिश्चौव ब्राह्मणं तदिहोच्यते।।" वेदों के संहिता भाग के संग्रह के पश्चात् वैदिक साहित्य में ब्राह्मण ग्रन्थों का स्थान है। ये ब्राह्मण ग्रन्थ वैदिक संस्कृति, धर्म और दर्शन को समझने के लिए अपरित्याज्य हैं। इनके महत्त्व और प्राचीनता का अनुमान इसी से स्पष्ट है कि अनेक ग्रन्थों में वैदिक संहिताओं की भाँति इन्हें भी 'वेद' कहकर पुकारा गया है 'मन्त्रब्राह्मणात्मको वेदः', अथवा "मन्त्र ब्राह्मणयो वेदनामधेयम्" अर्थात् मन्त्र (वैदिक संहिताएँ) और ब्राह्मण वेद हैं अथवा मन्त्र और ब्राह्मण दोनों का नाम वेद है। यहाँ पर इनका शाब्दिक अर्थ ग्राह्य नहीं है। वास्तव में वैदिक संहिताओं और ब्राह्मण ग्रन्थों का अस्तित्व पृथक् है। एक मूल है, तो दूसरे उसके व्याख्या ग्रन्थ हैं। यहाँ पर इस उक्ति का लाक्षणिक अर्थ ही अभिप्रेत है। यह उक्ति ब्राह्मण ग्रन्थों की वेदों को समझने के लिए उपयोगिता बतलाती है। वेद और ब्राह्मण ग्रन्थ एक दूसरे के पूरक हैं। जो मन्त्र संहिताओं में दिए गए हैं, ब्राह्मण ग्रन्थ उनकी व्याख्या करते हैं। इस प्रकार वस्तुतः ब्राह्मण ग्रन्थों के बिना वेदों को पूर्ण रूप से समझना असम्भव है अतः लाक्षणिक रूप में ब्राह्मण ग्रन्थों को भी वेद कह दिया गया है।

3.3 ब्राह्मण ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय।

ब्राह्मण ग्रन्थों में इस बात का कहीं भी स्पष्ट निर्देश नहीं है कि उनका रचनास्थल कौन सा है फिर भी भौगोलिक परिस्थितियों को देखते हुए और जिन प्रदेशों का वर्णन इन ग्रन्थों में प्राप्त होता है, उन अन्तःसाक्ष्य प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इनकी रचना कुरु पाञ्चाल नगर में हुई। वैदिक आर्य सप्तसिन्धु से धीरे धीरे आगे की तरफ बढ़े और ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना के समय तक वे गङ्गा तथा यमुना के दोआब तक आ गए और वहीं इन नदियों के बीच में विद्यमान कुरु पाञ्चाल नगर में ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना हुई। जैसा कि पहले ही वेदों की रचना तिथि में कहा जा चुका है कि वेदों की एक निश्चित तिथि का निर्णय करना दुष्कर ही नहीं बल्कि असम्भव भी है, इसी कारण ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना किस समय हुई, इसके लिए भी कोई निश्चित तिथि निर्धारित करना असम्भव है क्योंकि वेदों और ब्राह्मणों का रचना

काल परस्पर सम्बन्धित है। इनकी रचना में शताब्दियों का समय लगा होगा। सामवेद के 'वंश ब्राह्मण' में गुरु शिष्य परम्परा में 50 गुरुओं के नाम दिए हैं, जिनकी ऐतिहासिकता के विषय में तनिक भी संशय नहीं किया जा सकता। इसका कारण एक तो यह है कि वैदिक साहित्य में अनेकों बार इनके नाम प्राप्त होते हैं और दूसरे पुराणों में भी यह वंशावलि इसी क्रम से दी गई है। इन 50 गुरु शिष्यों की नामावली को ध्यान में रखते हुए तो ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना में 1000 वर्ष से भी कहीं अधिक समय लगा होगा। पाश्चात्य विद्वान् मैक्डॉनल इन्हें 800 से 500 ईस्वी पूर्व का मानते हैं। मैक्समूलर ने इनका रचना काल 800 से 600 ईस्वी पूर्व का निश्चित किया है। प्रो० एस० बी० दीक्षित ने अपने ग्रन्थ 'हिस्ट्री ऑफ इन्डियन एस्ट्रोनोमी' में शतपथ ब्राह्मण को ईसा से 3000 वर्ष पूर्व का माना है। उन्होंने यह निष्कर्ष कृत्तिका नामक नक्षत्र की अवस्था को ध्यान में रखते हुए निकाला है। लोकमान्य तिलक इन्हें 2500 से 1400 ईस्वी पूर्व का मानते हैं। प्रो० भगवद्दत्त ने ब्राह्मण ग्रन्थों को महाभारत का समकालीन माना है लेकिन इस बात का कहीं भी निर्देश नहीं किया कि महाभारत का रचना काल क्या है? वस्तुतः महाभारत का रचनाकाल स्वयं ही अनिश्चित है, अतः भगवद्दत्त का यह कथन निरर्थक प्रतीत होता है। वास्तव में ब्राह्मण ग्रन्थों के रचनाकाल की कोई एक तिथि नहीं बताई जा सकती। इनकी रचना में शताब्दियाँ लगी होंगी। कुछ विद्वानों का मत है कि इन ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रणयन जिस समय हुआ, उस समय तक समस्त संहिता साहित्य का सङ्कलन हो चुका था। यही मत अधिक तर्क सङ्गत एवं समीचीन प्रतीत होता है क्योंकि वैदिक संहिताओं के सङ्कलन में एक विशेष तारतम्य तथा अनवतत्ता है। यह पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि एक ग्रन्थ की विधि को भूला दिए जाने पर ही दूसरे ग्रन्थ की आवश्यकता अनुभव की गई। जब ऋग्वेद के मन्त्रों में आरोह अवरोह, लय व उच्चारण विधि की स्मृति शिथिल होने लगी तो सामवेद का सङ्कलन हुआ और जब यज्ञीय विधि भी विस्मृत होने लगी तो यजुर्वेद को सङ्कलित किया गया। इसी प्रकार जब वैदिक मन्त्रों का अर्थ अस्पष्ट होने लगा और उनके विधि विधान भी विस्मृत होने लगे तो ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना की गई। ये ग्रन्थ वैदिक मन्त्रों के अर्थ को पूर्ण रूप से व्याख्या, आख्यान, उपाख्यान, निरुक्ति, व्युत्पत्ति आदि देकर करते हैं। इनका ब्राह्मण ग्रन्थों का रचनाकाल वेदों के रचनाकाल पर आश्रित है और जब वेदों का ही रचनाकाल 'इत्थमिदम्' निश्चित नहीं तो ब्राह्मण ग्रन्थों का रचनाकाल कैसे निर्धारित किया जा सकता है। हाँ इतना अवश्य कहा जा सकता है कि वेदों के रचनाकाल और इनके रचनाकाल में पर्याप्त अन्तराल रहा होगा और ईसा से छठी शताब्दी पूर्व तक इनकी समाप्ति हो चुकी होगी।

3.4 ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रतिपाद्य विषय।

ब्राह्मण ग्रन्थों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय यज्ञ एवं यज्ञप्रक्रिया का सर्वाङ्गीण विवेचन है। यज्ञमीमांसा के दो मुख्य भाग हैं—विधि और अर्थवाद। 1— विधि का अभिप्राय है— यज्ञप्रक्रिया का विशद निरूपण। जैसे यज्ञ कब, कहाँ, कैसे किया जाये? यज्ञ के लिए कितने ऋत्विज चाहिए और प्रत्येक के क्या-क्या कर्तव्य हैं। यज्ञ के लिए क्या-क्या सामान चाहिए। यज्ञशाला का निर्माण आदि। अतएव आपस्तम्ब का कथन है— 'कर्मचोदना ब्राह्मणानि' अर्थात् ब्राह्मण ग्रन्थ विविध यज्ञरूप कर्मों में मनुष्यों को प्रेरित करते हैं।

2— अर्थवाद का अभिप्राय है— स्तुति या निन्दापरक विविध विषय। साथ ही निषिद्ध कर्मों की निन्दा की जाती है। इस प्रकार के विषय अर्थवाद के अन्तर्गत आते हैं। वाचस्पति मिश्र ने लिखा है—

नैरुक्त्यं यस्य मन्त्रस्य विनियोगः प्रयोजनम्। प्रतिष्ठानं विधिश्चौव ब्राह्मणं तदिहोच्यते।।

वाचस्पति मिश्र ने ब्राह्मण ग्रंथों के चार प्रयोजन बताइए हैं। जिनमें

1— निर्वचन—शब्दों की निरुक्ति बताना। किसी वस्तु का वह नाम क्यों पड़ा है। उसका आधार क्या है तथा किस धातु से वह नाम बना है।

2— विनियोग किसी अच्छे कार्य की किस विधि में किन मंत्रों का पाठ किया जाएगा इस कार्य के लिए कौन सा मंत्र निर्दिष्ट है। इसका पूरा विवरण बताना विनियोग का अभिप्राय है कौन सा मंत्र किस कार्य के लिए है इसका निर्देश देना।

3— अर्थवाद प्रतिष्ठान का अभिप्राय है अर्थवाद यज्ञ की प्रत्येक विधि का क्या महत्व है, उसके करने से क्या लाभ है

आदि प्रस्तुत करना साथी यज्ञ में निश्चित करें कार्यों की निंदा करना और उनके दोष बताना भी अपवाद के अंतर्गत आता है।

4— विधि—यज्ञ और उससे संबद्ध कार्यकलाप का विस्तृत विवरण बताना यज्ञ कब कहाँ कैसे किया जाएगा? किस यज्ञ के लिए क्या सामग्री अपेक्षित है तथा कौन सा ऋत्विज् क्या काम करेगा आदि का विशद वर्णन करना। मीमांसा दर्शन के शाबर भाष्य में शबरस्वामी ने इन्हीं विषयों को कुछ और विस्तृत करते हुए ब्राह्मण ग्रंथों के प्रतिपाद्य विषयों की संख्या 10 बताई है—

हेतु निर्वाचनाम निंदा प्रशंसा संशयो विधिः। परक्रियापुराकाल्यो व्यवधारण कल्पना।

उपमानं दशैते तु विधयो ब्राह्मणस्य वै।। (मीमांसा सूत्र, शाबर भाष्य—2.18)

पहला हेतु— यज्ञ में कोई कार्य क्यों किया जाता है इसका कारण बताना। दूसरा निर्वचन शब्दों की नियुक्ति बताना जैसे नदी शब्द करना, धातु से नदी शब्द बना तीसरा। निंदा— यज्ञ में निंदा निषिद्ध कर्मों की निंदा जैसे यज्ञ में असत्य भाषण निश्चित है असत्य भाषण को निंदा करते हैं। प्रशंसा— यज्ञ में विभिन्न कार्यों की प्रशंसा करना जैसे यज्ञो वै श्रेष्ठतमः कर्म— अर्थात् यज्ञ सबसे श्रेष्ठ कर्म है अतः अवश्य करना चाहिए इस प्रकार यज्ञ की प्रशंसा करना। पांचवा संशय— किसी यज्ञ कर्म के विषय में कोई संदेह उपस्थित हो तो उसका निवारण करना, यह कार्य इस प्रकार से ही किया जाए। इसका स्पष्ट निर्देश करना। छठा विधि— विधि का अभिप्राय है यज्ञ क्रियाकलाप की पूरी विधि का विशद निरूपण। कौनसा कार्य पहले किया जाए तथा उसके बाद के कार्यों का तारतम्य से विवरण प्रस्तुत करना। सातवां प्रक्रिया— इसके अर्थ के विषय में पर्याप्त मतभेद है प्रक्रिया का भाव है परार्थक क्रिया पर हित या परोपकार वाले कर्मों को कर्तव्यों का वर्णन इसमें इष्टापूर्त का समावेश है। इसका अभिप्राय है विविध याग आदि। पूर्व का अभिप्राय है धर्मार्थ कार्य जैसे कूप तडाग आदि का निर्माण, धर्मशाला अनाथालय आदि का निर्माण, ब्राह्मण ग्रंथ ऐसे जनहित के कार्यों का उपदेश देते हैं। आठवां पुराकल्प— यज्ञ की विधि विभिन्न विधियों के समर्थन में किसी प्राचीन आख्यान या ऐतिहासिक घटना का वर्णन करना जैसे राजा के अभाव में जनता के बीच रहती थी, राजा के वर्ण की व्यवस्था की गई। हरिश्चंद्रोपाख्यान में प्रसिद्ध “चरैवेति, “चरैवेति” चलते रहो, चलते रहो आदि निर्देश। नवा व्यवधारण कल्पना — परिस्थिति के अनुसार कार्य की व्यवस्था करना। सायण ने इसका उदाहरण दिया है जितने घोड़े हों उतने जल भरे पात्र रखें। घोड़ों की संख्या के अनुसार उनके लिए पीने के पात्र रखने हैं। इसी प्रकार यज्ञ आदि में अभ्यागतों की संख्या के अनुसार आसनों की व्यवस्था की जाएगी। दशावां उपमान— कोई उपमा या उदाहरण देकर

वर्ण्य विषय की पुष्टि करना। जैसे ऐतरेय ब्राह्मण में “चरैवेति” की पुष्टि में सूर्य का उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। सूर्य निरंतर चलता रहता है उस की तेजस्विता बनी रहती है। सूर्यस्य पश्य श्रेयमाणं यो न तन्द्रयते चरन। चरैवेति चरैवेति०। ब्राह्मणों में विविध और ब्राह्मणों में विधि और अर्थवाद के अतिरिक्त उपनिषद् का भी प्रतिपादन किया गया है। ब्राह्मणों में यज्ञ आदि की अत्यधिक दार्शनिक और वैज्ञानिक व्याख्याएं भी प्रस्तुत की गई हैं। यज्ञ केवल कर्मकांड नहीं है, अपितु सृष्टि विद्या का प्रतीक है। इसके द्वारा सृष्टि के गूढ़ रहस्य को स्पष्ट किया गया है जैसे यजुर्वेद, शतपथ ब्राह्मण आदि में यज्ञ को विष्णु कहा गया है। इसका अभिप्राय यह है कि यज्ञ ब्रह्म प्राप्ति का साधन है। विष्णु के तीन पग (पद) ध्रुलोक, अंतरिक्ष और पृथ्वी हैं। वह सर्वव्यापक है, उसकी प्राप्ति के लिए यज्ञ है, यह आध्यात्मिक और दार्शनिक व्याख्या ब्राह्मण ग्रंथ ही करते हैं। वाक् ब्रह्म है, वाणी का संयम और मनोनिग्रह ब्रह्म की उपासना है।

यजुर्वेद के मंत्र 13/53 में जल के विराट रूप की वैज्ञानिक व्याख्या की गई है वाग् वै ब्रह्म ऐतरेय ब्राह्मण एवं शतपथ ब्राह्मण में भी। शतपथ ब्राह्मण— अपां त्वेमन् सादयामि, अपां त्वोद्मन्, भस्मन् यजु० 13.56)। शतपथ ब्राह्मण की सहायता के बिना इस मंत्र का अर्थ सर्वथा दुरुह है। इसमें इस मंत्र में दिए गए मन और धन शरीर इनको भी ठीक करना ही शब्द ठीक नहीं है आधी परिभाषिक शब्द का अर्थ शतपथ ब्राह्मण में विस्तार से स्पष्ट किया गया है। जल के आधार पर ही जुरु अंतरिक्ष विद्युत प्राण मंत्र समुद्र वनस्पतियों आदि की एकता है। यदि संसार में जल ना हो तो संसार के किसी भी वस्तु का अस्तित्व संभव नहीं है। इस प्रकार ब्राह्मण ग्रंथ न केवल यज्ञ की विधि का वर्णन करते हैं अपितु वेदों में पर्याप्त प्राप्त आध्यात्मिक दार्शनिक और वैज्ञानिक तथ्यों का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करते हैं। इस दृष्टि से ब्राह्मण ग्रंथ वैदिक वांग्मय के अति माननीय ज्ञानकोष हैं, चरैवेति चरैवेति।।

3.5 ब्राह्मण कालीन समाज

वैदिक साहित्य परंपरा में ब्राह्मण कालीन परिदृश्य अत्यंत सुंदर और मनोरम है इसमें जहां एक और सांसारिक क्रियाकलापों का वर्णन किस तरह होता है तो दूसरी ओर उनमें आध्यात्मिक विषयों का गंभीर चिंतन भी देखने को मिलता है। इस काल में पुरोहितों ने अपनी रचनात्मक शक्तियों को मुख्य रूप से यज्ञ कर्मकांड के विस्तार में लगा दिया परिणाम तय है। यहाँ कर्मकांड का ढांचा इतना जटिल और विचित्र बनाया जिसकी उपमा संसार में कहीं और नहीं मिलती, जबकि कुछ वैदिक परंपराओं के अध्ययी विद्वानों का अभिमत है कि ब्राह्मण ग्रंथों ने वैदिकों की परंपरागत सुकोमल भावना के स्थान पर कट्टरपंथी धर्म की स्थापना की। इस धारणा को पूर्णतया सत्य या असत्य नहीं कहा जा सकता परंतु यह अवश्य है कि ब्राह्मण ग्रंथों ने एक नए युग को जन्म दिया, जिसमें केवल कट्टरता ही नहीं थी अपितु कर्म फल और जन्मांतर जैसे विषयों को संस्थाओं में स्पष्ट करके छोड़ दिया था। उन्हें ब्राह्मण ग्रंथों ने समाज की अति आवश्यकता के रूप में प्रतिष्ठित किया जिसके द्वारा समाज के जन जीवन में कर्म के महत्त्व की नई भावना का उदय हुआ। समस्त कर्मों में श्रेष्ठतम होने के कारण ब्राह्मण ग्रंथों में यज्ञ को सर्वोपरि माना गया है “यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म” (शतपथ ब्राह्मण 1/7/3/5) ब्राह्मण के वचन के साथ ही यज्ञ को विश्व का सबसे श्रेष्ठ प्रजापति तथा विष्णु सूर्य आदि भी कहा गया है— “एष वै प्रत्यक्षं यज्ञो यत् प्रजापतिः” (शत 04/3/4/5)। “यज्ञो वै विष्णुः” स यः यज्ञोऽसौ आदित्यः... (14/1/1/16)। यज्ञ के सूक्ष्म अनुष्ठानों तथा विधियों का ब्राह्मण ग्रंथों में विस्तार से वर्णन किया गया है। यज्ञ करने से व्यक्ति की वैयक्तिक आत्मा के अतिरिक्त सामाजिक कल्याण भी होता है। यज्ञ में दी गयी हवि, वायु के द्वारा भी अंतरिक्ष में व्याप्त होकर सूर्य तक पहुंचती है और

मेघों के साथ मिश्रित होकर वर्षा के रूप में पृथ्वी को अभिषिक्त करती है। —(अग्निर्वैधूमो जायते, धूमाद्भमभ्राद् वृष्टिः (5/3/5/17)— वर्षा से अन्न की उत्पत्ति होती है और प्रजा धन धान्य, संपदा, सुखपूर्वक जीवन यापन करती है। (ऐतरेय 2/41) ब्राह्मण के वचन से ही देव प्रसन्न होते हैं और वे प्रजा का कल्याण करते हैं। यज्ञोपरान्त ऐहिक विपत्तियां तो नष्ट होती हैं साथ ही मानव जन्म मरण के बंधन से भी मुक्त हो जाता है। (शतपथ—2/3/3/9) गोपथ ब्राह्मण का उद्धारण है कि ब्राह्मण किसी को सुंदर उपमा के द्वारा विश्लेषित करता है। जिस प्रकार सांप अपनी पुरानी केचुली से छूट जाता है। तद् यथा हि जीरणायास्त्वचो निरमुच्यते०.....।। (गोपथ ब्राह्मण उत्तरार्ध 4/6) उसी प्रकार शाकल्य से हवन करने वाला समस्त पापों से छूट जाता है। साथ ही हवि अंतरिक्ष में व्याप्त होकर वर्षा के रूप में धरती पर बरस कर अन्न जल की वृद्धि करती है, वातावरण को कीटाणु मुक्त करती है। ब्राह्मण ग्रंथों की यह धारणा न केवल धार्मिक दृष्टि से वैज्ञानिक हैं बल्कि सांस्कृतिक दृष्टि से भी सत्य और सार्वभौम है। ब्राह्मणकालीन समाज पूर्ण रूप से नैतिक, आचारवान, सहृदयी, दयालु, सत्यनिष्ठ तथा सत्यभाषी था। विशेषकर सत्य की महिमा पर बड़ा बल दिया गया और यह कहा गया है कि जो सत्य बोलता है वह अपनी पवित्रता का हनन कर अपना भी अनिष्ट करता है। ऐसा व्यक्ति यज्ञ हेतु उपयुक्त नहीं होता— अमेध्यो वै पुरुषोयदनृतं वदति (3/1/3/8)। झूठ बोलने वाले व्यक्ति का तेज स्वतः ही शनैः—शनैः समाप्त होने लगता है। अतः सत्य को वेदवत् मानकर बोलना चाहिए और असत्य की प्रशंसा की गई है — तदेत तद् सत्यं त्रयी सा विद्या (शतपथ—9/5/1/18)। मानव कृत्य ही उसे इस लोक में यदि उन्नति प्रदान करते हैं तो परलोक में मोक्षप्रद होते हैं, अतः ब्राह्मण कालीन ग्रंथों में स्थान—स्थान पर मानव को दुष्कृत्यों से बचाने हेतु उपदेश न देकर निर्देश किए गए हैं— यः सकृत् पापकर्म कुर्यात्, कुर्यादेनस्ततोऽपरम् (ऐतरेय ब्राह्मण का 727)। ब्राह्मण ग्रंथों में जहां एक ओर निष्ठा तथा आस्था व्यक्त की गई है वहीं दूसरी ओर असत् कर्मों की निंदा की गई है क्योंकि यह धारणा बन चुकी थी कि जो सत्यभाषी तथा पापी व्यक्ति देवताओं की सहानुभूति नहीं प्राप्त कर सकते उन्हें देवताओं का कोप भाजन बनना ही पड़ता है— वाचौ वाव तौ स्तनौ सत्यानृते वाव ते। अपत्येनं सत्यं न तमनृतं हिनस्ति य एवं वेद। (ऐत० ब्रा०4 प्राणी मात्र/1)। मनुष्य के कल्याण की भावना ब्राह्मण समाज का आदर्श था। सहृदयता सामंजस्य, दानशीलता आदि नैतिक गुण समाज में सर्वत्र व्याप्त थे। दानशीलता की महिमा का दर्शन ऐतरेय ब्राह्मण में कुछ इस प्रकार मिलता है— कऽनृत पुरुष इति। न देवान् न पितॄन् न मनुष्यान्निति।— (ऐ० ब्रा 7/9)। जो मनुष्य न देवो, न पितरों, अतिथियों को दान देता है अर्थात् अर्पण करता है वह पुरुष आधारित कोष्टक में कहलाता है। इसी प्रकार घर आए हुए अतिथि का विशेषकर संध्या समय आए हुए अतिथि का अनादर नहीं करना चाहिए यहां तस्मादाहुर्न सामयतिथिरपरुष्यः (ऐ० ब्रा०5/30)। समाज में दी हुई संपत्ति कहीं दुराचार का कारण न बन जाए इसलिए ऋषियों ने सदाचारी सामाजिक कार्यकर्ता निर्धन विद्वान् व्यक्ति अर्थात् सुपात्र को दिया हुआ दान रक्त बताया है जो सुपात्र को दान देता है। वह यावत् जीवन प्रसन्न रहता है — ‘यदा वै अतिथि परिवेविषत्यापीन इव वै स तर्हि भवति।’ (ऐ० ब्रा1/17)।

वैदिक कालीन जीवन सरल तथा परामर्शी समदर्शी था। इस काल के ऋषियों की मनःस्थिति किसी भी प्रकार के दुष्प्रभावों से ग्रस्त थी उसकी आवश्यकताएं सीमित थीं, तो साधन भी सीमित थे। सृष्टि के समस्त कार्यकलापों के मूल में जो एक अदृश्य शक्ति थी, उसको भी उन्होंने खोज निकाला था। उसकी सरल भावनाएं और मार्ग सीधा तथा प्रशस्त था। किंतु जो वैदिक कालीन सहज भावनाएं थी ब्राह्मण काल में असहज होने लगी थीं। वेदों की भावना प्रबल मनोवृत्ति ब्राह्मण युग में स्वार्थ से आक्रांत

दिखाई देने लगी। वैदिक ऋषियों में सहृदयता, उदारता का अभाव सा प्रतीत होने लगा।

नैतिकता

ब्राह्मण ग्रन्थों में नैतिकता का अभाव नहीं है जैसा कि पश्चात्य विद्वान कहते हैं कि ब्राह्मण ग्रन्थों में नैतिकता के विषय स्वल्प स्थानों पर ही चर्चित हैं। उस समय का समाज आचारनिष्ठ एवं पूर्ण नैतिक था। सत्य बोलना, सत्य विचार और सत्कर्म आदि ब्राह्मणयुग के प्रमुख धर्म थे। उस समय मिथ्या भाषण करना तथा मिथ्या आचरण करना महान् पाप समझा जाता था।¹ वहाँ यह बताया गया है कि असत्यवादियों का तेज धीरे धीरे क्षीण होता जाता है और वह नित्य पापी होता जाता है अतः मनुष्य को सत्य बोलना चाहिए।² शतपथ ब्राह्मण में यह बताया गया है कि असत्यवादियों को यद्यपि थोड़े समय के लिए सफलता मिल सकती है किन्तु अन्त में उसका सर्वनाश हो जायेगा। इसके विपरीत सत्यवादियों को प्रारम्भ में भले ही कुछ कष्ट भोगना पड़े किन्तु अन्त में उसे पूर्ण सफलता मिलती है।³ ताण्डय ब्राह्मण में कहा गया है कि सत्य के द्वारा ही स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है।⁴ इस प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थों में सत्य का सर्वाधिक महत्व बताया गया है। क्योंकि सत्य को मानव अभ्युदय का श्रेयस्कर साधन माना गया है। यही कारण है कि सत्यवादी सदा अजेय रहता है।

3.6 ब्राह्मण ग्रन्थों का महत्व

वैदिक वाङ्मय का दूसरा महत्वपूर्ण अंग ब्राह्मण ग्रंथ है संख्याओं की विस्तृत विवेचना के पश्चात ब्राह्मणों का परिचय देना आवश्यक है। ब्राह्मण शब्द ब्रह्म शब्द से निर्मित है तदनुसार इसका अर्थ है ब्रह्म से संबंधित अथवा ब्राह्मण की व्याख्या करने वाला ग्रंथ ब्रह्म शब्द के अनेक अर्थ भी हैं जिनमें मुख्यतया एक अर्थ है मंत्र। आचार्य बलदेव उपाध्याय जी का कहना है कि जो परंपरा से मंत्र नहीं है वह ब्राह्मण है ब्राह्मण नहीं है वह मंत्र है। यह भी कि कर्मकांड की व्याख्या तथा विवरण प्रस्तुत करना ब्राह्मणों का मुख्य विषय है ब्राह्मणों पर विस्तृत रूप से दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि ब्राह्मणों में मंत्रों, कर्म तथा सभी नियमों की व्याख्या है। आचार्य बलदेव उपाध्याय जी के अनुसार—ग्रंथ वाचन ब्राह्मण शब्द नपुंसक लिंग में ही विशेषतः व्यवस्थित किया गया है। मेदिनी कोष के अनुसार—भेदभाव का सूचक ब्राह्मण शब्द नपुंसक ही होता है—ब्राह्मण ब्राह्मण गाते वेद भागे नपुंसक। ग्रंथ अर्थ में ब्राह्मण शब्द का प्रयोग पाणिनि अष्टाध्याई 34, 36 निरुक्त 427 4696/2582 उपलब्ध होता है तथा ब्राह्मण में सर्वप्रथम प्रयोग मिलता है एक ब्राह्मण ने यह संस्कृत में एक से एक शब्द से ब्राह्मण में अनेक स्थानों पर नपुंसकलिंग ब्राह्मण शब्द पवित्र वाणी प्रार्थना तथा पवित्र ज्ञान के अर्थ में प्रयुक्त होता है। वही पुल्लिंग ब्राह्मण शब्द पुरोहित अथवा ब्राह्मण पुरोहित के अर्थ में प्रयुक्त होता है आर्यों की धार्मिक व्यवस्था परंपरा तथा आचार व्यवहार के संबंध में जो नीति नियम और विधि व्यवस्थाएं हैं, उनका विस्तृत वर्णन करने वाले आदि ग्रंथों में ब्राह्मण ग्रंथों का नाम प्रमुख है।

¹ अमेध्यों वै पुरुषो यदनृतं वदति (शतपथ ब्राह्मण)

² तस्य कनीयः कनीय एव तेजो भवति — श्वः—श्वः षापीयान् भवति, तस्माद् सत्यमेव बदेत् (शतपथ ब्राह्मण)

³ शतपथ ब्राह्मण

⁴ ऋतेनैव स्वर्ग लोकं गमयति (ताण्डय ब्राह्मण)

ऋग्वेद :

ऐतरेय ब्राह्मण – (शैशिरीय शाकल शाखा)

कौषीतकि – (या शांखायन) ब्राह्मण (वाष्कल शाखा)

सामवेद :

प्रौढ (पंचविंश) ब्राह्मण

षड्विंश ब्राह्मण

आर्षेय ब्राह्मण

मन्त्र (या छान्दिग्य) ब्राह्मण

जैमिनीय (या तावलकर) ब्राह्मण

यजुर्वेद

शुक्ल यजुर्वेद :

शतपथ ब्राह्मण—(माध्यन्दिनीय वाजसनेयि शाखा)

शतपथ ब्राह्मण—(काण्व वाजसनेयि शाखा)

कृष्ण यजुर्वेद :

तैत्तिरीय ब्राह्मण

मैत्रायणी ब्राह्मण

कठ ब्राह्मण

कपिष्ठ ब्राह्मण

अथर्ववेद :

गोपथ ब्राह्मण (पिप्पलाद शाखा)

3.7 ब्राह्मण ग्रन्थों का सारांश

ब्राह्मण ग्रंथ यानि सत ज्ञान ग्रंथ, वेदों के कई सूक्तों या मंत्रों का अर्थ करने में सहायक होते हैं। वेदों में देवताओं के सूक्त हैं, जिनको वस्तु, व्यक्तिनाम या आध्यात्मिक मानसिक शक्ति मानकर कई व्याख्यान बनाए गए हैं। ब्राह्मण ग्रंथ इन्हीं में मदद करते हैं। जैसे –

1. विद्वांसो हि देवा – शतपथ ब्राह्मण के ये विद्वान ही देवता होते हैं।
2. यज्ञः वै विष्णुः – यज्ञ ही विष्णु है।
1. अश्रवं वै वीर्यम् – अश्व वीर्य, शौर्य या बल को कहते हैं।

इस विवरण में ब्राह्मणों का परिचय, प्रातिपद्य विषय आदि का महत्व बताया गया है। आशा है यह पाठ अध्ययनकर्ताओं के लिए वेदों एवं ब्राह्मण ग्रंथों को समझने में सहायक होगा।

बोध प्रश्न –

ब्राह्मण परिचय
तथा प्रमुख ब्राह्मण

I. निम्नलिखित प्रश्नों के सही उत्तर पर सही चिह्न लगायें –

1. ऋग्वेद ब्राह्मण किस नाम से जाना जाता है?
शतपथ ब्राह्मण/ऐतरेय ब्राह्मण
2. शांखायन ब्राह्मण का अन्य नाम क्या है?
कौशिकी/ऐन्द्रमहाभिषेक
3. शतपथ ब्राह्मण यजुर्वेद की किस शाखा से संबंध रखता है?
शुक्ल यजुर्वेद/कृष्ण यजुर्वेद
4. षड्विंश ब्राह्मण किस वेद से सम्बन्धित है?
कृष्ण यजुर्वेद/सामवेद
5. अथर्ववेदीय ब्राह्मण का क्या नाम है?
गोपथ/आर्षेय

II. ब्राह्मण का तात्पर्य बताइए।

II. यजुर्वेदीय ब्राह्मणों के नाम बताइए।

अभ्यास प्रश्न 2 –

- i. यज्ञो वै कर्म।
- ii. विशुद्धीद वृष्टिमन्नाद्यं।
- iii. पनर्मुत्युं मुच्यते य एवमेताम् मृत्योजतिमुक्ति वेद।
- iv. वै पुरुषो यदनृतं वदति।

अभ्यास प्रश्न 2 –

1. सामवेदीय ब्राह्मणों की विस्तृत चर्चा किजिए।
2. ब्राह्मणों के उद्देश्य बताते हुए प्रतिपाद्य विषय की विवेचन किजिए।

उत्तर – 1. ऐतरेय 2. कौशिकी 3. शुक्लयजुर्वेद 4. सामवेद 5. गोपथ

अभ्यास 2 –

उत्तर – 1. श्रेष्ठतमं 2. सम्प्रयच्छति 3. अग्निहोत्रे 4. अमेध्यो

इकाई 4 आरण्यक परिचय तथा प्रमुख आरण्यक

इकाई की रूपरेखा

- 4.0 प्रस्तावना
- 4.1 आरण्यक परिचय
- 4.2 आरण्यकों का महत्व
- 4.3 आरण्यकों का प्रतिपाद्य विषय
- 4.4 आरण्यकों के रचयिता
- 4.5 आरण्यकों के प्रमुख आरण्यक
- 4.6 सारांश
- 4.7 बोध प्रश्न अभ्यास

4.0 प्रस्तावना

- आरण्यक ब्राह्मण ग्रंथों के अंतिम भाग हैं।
- इनमें मंत्रों की रहस्यात्मक शक्ति और जादुई प्रभाव का उल्लेख है।
- इसमें ज्ञान और चिंतन को प्रधानता दी गई है।
- आरण्यकों में यज्ञ अनुष्ठान पद्धति, याज्ञिक मंत्र, पदार्थ तथा फल आदि में आध्यात्मिकता का संकेत दिया गया है।

अतः इस इकाई के माध्यम से हम कह सकते हैं कि वही आरण्यक है जो मनुष्य को आध्यात्मिक बोध की ओर झुकाकर सांसारिक बंधनों से ऊपर उठाते हैं।

4.1 आरण्यक परिचय

स्थूल के विरुद्ध सूक्ष्म के प्रति आकर्षण स्वभावतः उत्पन्न हो जाता है। श्रौत्यागों के सन्दर्भ में भी, जनमानस में, विशेष रूप से प्रबुद्ध वर्ग में इसी प्रकार का आकर्षण शनैः शनैः उत्तरोत्तर अभिवृद्ध हुआ। यज्ञ के द्रव्यात्मक स्वरूप के बहुविध स्वरूप-विस्तार में जब उसका वास्तविक मर्म ओझल होने लगा, तो यह आवश्यकता गहराई से अनुभव की गई कि श्रौत्यागों की आध्यात्मिक एवं प्रतीकात्मक व्याख्या की जाए। ब्राह्मण ग्रन्थों के उत्तरार्द्ध में, इसी दृष्टिकोण को प्रधानता प्राप्त हुई और उसमें वैदिक यागों के अन्तर्तम में निहित गम्भीर अर्थवत्ता, वास्तविक मर्म और आध्यात्मिक, रहस्यों के सन्धान के लिए जिस चिन्तन को आकार मिला, उसी का नामकरण आरण्यक साहित्य के रूप में हुआ।

ब्राह्मण ग्रन्थों के बाद आरण्यक ग्रन्थों का स्थान आता है। ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों के बीच की कड़ी आरण्यक है। कर्मकाण्ड की दृष्टि से ब्राह्मण ग्रन्थ एवं आरण्यक ग्रन्थ परस्पर संबंधित है तो ज्ञानकाण्ड की दृष्टि से आरण्यक ग्रन्थ एवं उपनिषद् परस्पर सम्बन्धित है। आरण्यक ब्राह्मण ग्रन्थों के अन्तिम रूप हैं। आरण्यक ग्रन्थों में यज्ञ की आध्यात्मिक व्याख्या दी गई है।

आरण्यक ग्रन्थों को आरण्यक इसलिए कहा जाता है, क्योंकि इनका पठन-पाठन नगरों तथा ग्रामों में न होकर अरण्यों (वनों) में होता था—

‘अरण्यएव पाठ्यत्वादारण्यकमितीर्यते’ अरण्यों। अर्थात् वनों में पढ़ें जाने के कारण इनका नाम आरण्यक पड़ा।

सुप्रसिद्ध विद्वान् एस०वी० आप्टे ने अपने सुप्रसिद्ध ‘संस्कृत अंग्रेजी कोष’ में आरण्यक शब्द की व्याकरण सम्मत व्याख्या करके यह स्पष्ट किया है कि आरण्यक ग्रन्थ एक प्रकार से धार्मिक एवं दार्शनिक लेख है। जो ब्राह्मण ग्रन्थों से सम्बन्धित है और जिनका निर्माण अरण्यों में हुआ था जो वनों में पढ़ाए जाने के लिए रचे गए।—

अरण्येनुच्यमानत्वात् आरण्यकम्।

एवं

अरण्येध्ययनादेव आरण्यकमुदाहृतम्।

2. आरण्यकों का महत्त्व

वैदिक वाङ्मय में आरण्यक ग्रन्थों का कई दृष्टि से विशेष महत्त्व है। इसके प्रमुख कारण ये हैं।

1. आरण्यक ग्रन्थ : ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों को जोड़ने वाली कड़ी है। ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञों के दार्शनिक और आध्यात्मिक पक्ष का जो अंकुरण हुआ है, उसका पल्लवित रूप आरण्यक ग्रन्थ हैं। इनमें उस विषय का और विस्तृत विवेचन हुआ है। इसका ही सुविस्तृत रूप उपनिषद हैं।
2. सकाम से निष्काम की ओर प्रवृत्ति : श्रौत यज्ञ सकाम कर्म हैं, अतः निष्काम अध्यात्म की ओर प्रवृत्ति मानव की प्रकृति का अंग है। गृहस्थ के लिए सकाम कर्म ठीक हैं, परन्तु वानप्रस्थ और संन्यासी के लिए ये हेय हैं, अतः अध्यात्मज्ञान हेतु आरण्यकों की आवश्यकता हुई।
3. स्थूल से सूक्ष्म की ओर : आरण्यक स्थूल से सूक्ष्म, भौतिकवाद से अध्यात्म की ओर, मूर्त से अमूर्त की ओर ले जाने वाले हैं।
4. दार्शनिक चिन्तन : आरण्यकों में यज्ञ प्रक्रिया के दार्शनिक पक्ष का विवेचन है। यज्ञ के गूढ़ भावार्थ को इनमें स्पष्ट किया गया है। इनमें ब्राह्मण ग्रन्थों में प्राप्त दार्शनिक संकेतों का विशदीकरण है।
5. वेदों का नवनीत : महाभारत का कथन है कि आरण्यक ग्रन्थ वेदों के सार भाग हैं। जैसे दही से मक्खन, मलय से चन्दन और ओषधियों से अमृत प्राप्त होता है, वैसे ही वेदों से आरण्यक प्राप्त हुए हैं।

नवनीतं यथा दध्नो मलयाच्चन्दनं यथा ।

आरण्यकं च वेदेभ्य ओषधिम्योऽमृतं यथा । (महा० १.३३१.३)

आरण्यकों में पवित्र ब्रह्मविद्या का वर्णन है, अतः इसके पढ़ने और सुनने का अधिकार भी संयमी, व्रती और सात्त्विक प्रवृत्ति के व्यक्ति को ही है। सायण ने तैत्तिरीय आरण्यक की भूमिका में कहा है कि अत्रती को इसको पढ़ने और सुनने का अधिकार नहीं है।

एतदारण्यकं सर्वं नाव्रती श्रोतुमर्हति ।

सायण, तैत्ति० आर० भूमिका ६

3 आरण्यकों का प्रतिपाद्य विषय

आरण्यक ग्रन्थ उपनिषदों के पूर्वरूप हैं। उपनिषदों में आत्मा, परमात्मा, सृष्टि उत्पत्ति, ज्ञान, कर्म, उपासना और तत्त्वज्ञान का प्रतिपादन है। उसी तत्त्वज्ञान का प्रारम्भिक रूप हम आरण्यकों में पाते हैं।

यज्ञ का दार्शनिक रूप — आरण्यकों में वैदिक यागों के आध्यात्मिक और दार्शनिक पक्ष का विवेचन प्राप्त होता है। ऐतरेय, शतपथ, ताण्डय, गोपथ आदि ब्राह्मणों में यज्ञ को विष्णु या ब्रह्म का स्वरूप माना गया है। यज्ञ की दार्शनिक व्याख्या ब्रह्म के स्वरूप का ही विवेचन है। आरण्यक यही विवेचन प्रस्तुत करते हैं।

प्राणविद्या : आरण्यकों में प्राणविद्या के महत्त्व पर विशेष प्रकाश डाला गया है। ऐतरेय आरण्यक में प्राणविद्या का विशेष वर्णन है। ऋग्वेद में प्राणविद्या के सूत्र हैं 'आयुर्न प्राणः' 'पुनः प्राणमिह नो धेहि'। अथर्ववेद में एक पूरा सूक्त (११.४.१-२६) प्राणविद्या के महत्त्व का वर्णन करता है। इसमें प्राण को संसार का स्वामी और नियन्ता कहा गया है। प्राण ही संसार का आधार है। ऐतरेय आरण्यक में इसी प्राणविद्या का विशदीकरण है। प्राण संसार का धारक है। मनुष्य से लेकर चींटी तक सभी प्राण पर निर्भर हैं। जब तक प्राण है, तब तक ही जीवन है। सारा संसार प्राण से घिरा हुआ है। प्राण सर्वत्र व्याप्त है। प्राण से ही अन्तरिक्ष और वायु की उत्पत्ति हुई है। ये दोनों प्राणरूपी पिता की सदा सेवा करते हैं।

प्राण ही कालचक्र है। दिन और रात्रि प्राण एवं अपान हैं। प्राण की ब्रह्म के रूप में उपासना करनी चाहिए। प्राण ही सब देवों का रूप है। वही वाणी में अग्नि है, चक्षु में सूर्य है और मन में चन्द्रमा। प्राण ही ऋषियों के रूप में है। गृत्समद, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि, भरद्वाज और वसिष्ठ आदि सभी ऋषि प्राण के रूप हैं। जैसे प्राण विश्व का मित्र है, अतः वह विश्वामित्र है। प्राण शरीर में निवास करता है, अतः वह वसिष्ठ है। मैत्रायणी आरण्यक में प्राण को अग्नि और परमात्मा बताया गया है

प्राणोऽग्निः परमात्मा । (मैत्रा० आर० ६.६)

काल ब्रह्म— जिस प्रकार अथर्ववेद के कालसूक्तों (१६.५३ और ५४) में काल को ब्रह्म, परमेष्ठी और परमदेव (महादेव) आदि कहा गया है, उसी प्रकार तैत्तिरीय आरण्यक में कालचक्र का विशद वर्णन है। काल ही अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, संवत्सर आदि के रूप में निरन्तर प्रवाहमान है। वह महानदी के रूप में है, जिसमें मुहूर्त, दिन—रात्रि आदि आकर मिलते हैं और एकाकार हो जाते हैं। पारमार्थिक काल अखंड संवत्सर चक्र के रूप में नित्य और एक है। व्यावहारिक काल अनेक और अनित्य हैं। इसका ही वर्णन है:—

नदीव प्रभवात् काचिद् अक्षय्यात् स्यन्दते यथा ।

तां नद्योऽभिसमायान्ति सोरुः सती न निवर्तते ॥

एवं नाना समुत्थानाः कालं संवत्सरं श्रिताः । (तैत्ति० आर० १.२)

यज्ञोपवीत का उल्लेख — यज्ञोपवीत का सर्वप्रथम उल्लेख तैत्तिरीय ब्राह्मण (३.१०. ६-१२) में आता है। तैत्तिरीय आरण्यक में भी यज्ञोपवीत का महत्त्व वर्णित है। यज्ञोपवीत धारण करके जो यज्ञ, पठन आदि किया जाता है, वह सब यज्ञ की श्रेणी में आता है।—

प्रसृतो ह वै यज्ञोपवीतिनो यज्ञः, यत् किं च ब्राह्मणो यज्ञोपवीती अधीते यजत एव तत् ।
(तैत्ति० आर० २.१.१)

ऐतिहासिक तथ्य — आरण्यकों में कतिपय ऐतिहासिक तथ्यों का भी उल्लेख है।
तैत्तिरीय आरण्यक में गंगा-यमुना के मध्यवर्ती प्रदेश को अत्यन्त पवित्र बताया गया है।
इसी में कुरुक्षेत्र और खांडव वन का भी उल्लेख है।

नमो गंगायमुनयोर्मध्ये ये वसन्ति० । (तैत्ति० आर० २.२०)

शांखायन आरण्यक (६.१) में उशीनर, कुरुपांचाल, मत्स्य, काशी और विदेह जनपदों का वर्णन है।

उशीनरेषु, मत्स्येषु, कुरुपांचालेषु, काशिविदेहेषु । (शांखा० आ० ६.१)

मैत्रायणी आरण्यक में भारत के चक्रवर्ती सम्राटों के नाम मिलते हैं।

4 आरण्यकों के रचयिता—

1. ऐतरेय ब्राह्मण के प्रवक्ता महिदास ऐतरेय हैं। उनको ही ऐतरेय आरण्यक (तृतीय आरण्यक तक) का प्रवक्ता माना जाता है। ऐतरेय आरण्यक में इसका उल्लेख भी है।— ‘एतद् ह स्म वै तद् विद्वान् आह महिदास ऐतरेयः (२.१.८) ।’ ऐतरेय आरण्यक में चतुर्थ आरण्यक के प्रवक्ता आश्वलायन माने जाते हैं और पंचम आरण्य के शौनक । सायण ने भी ऐतरेयाण्यक के भाष्य में अपना यही मत प्रकट किया है—

ताश्च पंचमे शौनकेन शाखान्तरमाश्रित्य पठिताः ।

सायण शांखायन आरण्यक के प्रवक्ता ‘गुण शांखायन’ । इनके गुरु का नाम ‘कहोल कौषीतकि’ था। इसी आरण्यक के १५वें अध्याय में इसका स्पष्ट उल्लेख है।

गुणाख्यात् शांखायनाद् अस्माभिरधीतम् , गुणख्यः शांखायनः कहोलात् कौषीतकेः।
(शांखा० आर० अ० १५)

बृहदारण्यक के प्रवचनकर्ता महर्षि याज्ञवल्क्य हैं। ये संपूर्ण शतपथ ब्राह्मण के प्रवक्ता हैं। उसी ब्राह्मण का अन्तिम भाग बृहदारण्यक है ।

तैत्तिरीय आरण्यक कृष्ण यजुर्वेदीय आरण्यक है। सायण ने अपने भाष्य में कठ ऋषि को इसका प्रवक्ता बताया है।

कठेन मुनिना दृष्टं काठकं परिकीर्त्यते। (सायण, भूमिका, श्लोक १०—११)

मैत्रायणीय आरण्यक भी कृष्ण यजुर्वेदीय आरण्यक है । मैत्रायणीयों की गणना १२ कठों के अन्तर्गत है। अतः इसका प्रवक्ता भी कठ ऋषि ही समझना चाहिए । इसको ‘मैत्रायणीय उपनिषद्’ भी कहते हैं ।

‘तलवकार आरण्यक’ जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण ही है। इसके प्रवक्ता जैमिनि मुनि को ही समझना चाहिए।

२. शुक्लयजुर्वेदीय — बृहदारण्यक है। यह माध्यन्दिन और काण्व दोनों शाखाओं में प्राप्य है।

३. कृष्ण यजुर्वेदीय — कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय और काठक शाखाओं का एक आरण्यक है — तैत्तिरीय आरण्यक। मैत्रायणीय शाखा का एक आरण्यक

‘मैत्रायणीय आरण्यक’ है। इसको ही ‘मैत्रायणीय उपनिषद्’ भी कहते हैं। मैत्रायणी संहिता के अन्त में परिशिष्ट के रूप में यह उपलब्ध है।

४. सामवेदीय — सामवेद की जैमिनिशाखा का ‘तलवकार आरण्यक’ है। इसको ‘जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण’ भी कहते हैं। सामवेद की कौथुम शाखा का पृथक् आरण्यक नहीं है। छान्दोग्य उपनिषद् कौथुम शाखा से संबद्ध है। इसके कुछ अंशों को आरण्यक कहा जा सकता है।
५. अथर्ववेदीय — अथर्ववेद का कोई पृथक् आरण्यक नहीं है। गोपथ ब्राह्मण के ही ब्रह्मविद्या-परक कुछ अंशों का आरण्यक कह सकते हैं

4.5 आरण्यकों के प्रमुख आरण्यक

१. ऐतरेय आरण्यक

यह ऐतरेय ब्राह्मण का ही परिशिष्ट भाग है। इसमें पाँच भाग हैं। इन भागों को आरण्यक या प्रपाठक कहते हैं। ये पुनः अध्यायों में विभक्त हैं। इसमें ऋग्वेद के मंत्रों को बहुधा उद्धृत किया गया है। इसके लिए ‘तदुक्तम् ऋषिणा’ संकेत दिया गया है।

आरण्यकों के अनुसार वर्ण्य विषय इस प्रकार हैं:

- आरण्यक १ — इसमें महाव्रत का वर्णन है। यह महाव्रत ‘गवामयन’ सत्र का ही अंश है। इसमें प्रयोज्य मंत्रों की आध्यात्मिक और प्रतीकात्मक व्याख्या की गई है।
- आरण्यक २ — इसके प्रथम ३ अध्यायों में उक्थ (निष्कैवल्य, प्राणविद्या और पुरुष) का विवेचन है। इसके ४ से ६ अध्यायों में ऐतरेय उपनिषद् है।
- आरण्यक ३ — इसको ‘संहितोपनिषद्’ कहते हैं। इसमें संहिता, पदपाठ, क्रमपाठ तथा स्वर और व्यंजनों आदि के स्वरूप का विवेचन है। यह प्रातिशाख्यों से संबद्ध विषय है। इसमें शाकल्य और मांडूकेय आदि आचार्यों के मतों का भी उल्लेख है।
- आरण्यक ४ — इसमें ‘महानाम्नी’ ऋचाओं का संकलन है, जो महाव्रत में बोली जाती हैं।

आरण्यक ५ — इसमें निष्कैवल्य शस्त्र (मंत्रों) का वर्णन है।

ऐतरेय आरण्यक के विशिष्ट सन्दर्भ

१. प्राणविद्या — इसमें प्राणविद्या का बहुत विस्तार से वर्णन किया गया है।
२. प्रज्ञा का महत्त्व — पुरुष प्रज्ञा संपन्न है, अतएव वह सभी पदार्थों को जान सकता है, देख सकता है और पा सकता है। (ऐत० आर० २.३.२)
३. आत्मस्वरूप का वर्णन — आत्मा अदृष्ट अज्ञात और अश्रुत है,

२. शांखायन आरण्यक

यह ऋग्वेदीय आरण्यक है। इसमें १५ अध्याय हैं। अध्याय ३ से ६ तक को ६ ‘कौषीतकि उपनिषद्’ कहते हैं। अध्याय ७ से ८ को ‘संहितोपनिषद्’ कहते हैं।

इसको कौषीतकि आरण्यक भी कहा जाता है। अध्याय के अनुसार वर्ण्य विषय ये हैं :

आरण्यक परिचय
तथा प्रमुख
आरण्यक

अध्याय १ और २ – इनमें ऐतरेय आरण्यक के तुल्य महाव्रत का वर्णन है।

अध्याय ३ से ६ – कौषीतकि उपनिषद् व इसका विवरण उपनिषद् प्रकरण में है।

अध्याय ७ से ८ – संहितोपनिषद् इसका भी विवरण उपनिषद् प्रकरण में है।

अध्याय ९ – इसमें प्राण की श्रेष्ठता का वर्णन है।

अध्याय १० – इसमें आध्यात्मिक अग्निहोत्र का सांगोपांग वर्णन है।

अध्याय ११ – इसमें मृत्यु के निराकरण के लिए एक विशेष याग का विधान है।

अध्याय १२ – इसमें समृद्धि के लिए बिल्व (बेल) के फल से एक मणि बनाने का वर्णन है।

अध्याय १३ – इसमें श्रवण मनन आदि के लिए शरीर शुद्धि, तपस्या, श्रद्धा और दम आदि की आवश्यकता का वर्णन किया गया है।

अध्याय १४ – इसमें 'अहं ब्रह्मास्मि' और वेदों के अर्थज्ञान का महत्त्व बताया गया है।

अध्याय १५ – इसमें आचार्यों की वंश परंपरा दी गई है।

शांखायन आरण्यक के विशिष्ट सन्दर्भ

१. आध्यात्मिक अग्निहोत्र का महत्त्व : इस आरण्यक में बताया गया है कि बाह्य अग्निहोत्र की अपेक्षा आभ्यन्तर (आध्यात्मिक) अग्निहोत्र का बहुत अधिक महत्त्व है। जो साधक आन्तरिक आत्मतत्त्व को न जानकर केवल बाहरी यज्ञ करता है, वह भस्म में हवन करता है। सारे देवता शरीर के अन्दर प्रतिष्ठित हैं। आध्यात्मिक यज्ञ से उन सबकी तृप्ति होती है। (अध्याय १०)

२. तत्त्वमसि और अहं ब्रह्मास्मि – वेदान्तदर्शन के महावाक्य ये दोनों सुभाषित इस आरण्यक में हैं। 'तत् त्वम् असि' वह ब्रह्म ही जीवरूप में है। 'अहं ब्रह्म अस्मि' मैं ब्रह्मरूप हूँ, यह अनुभूति साधना की पराकाष्ठा है।

यदयम् आत्मा स एष 'तत् त्वमसि' इत्यात्माऽवगम्यः

'अहं ब्रह्मास्मि'। (अ० १३)

३. 'अहं ब्रह्मास्मि' का महत्त्व – 'अहं ब्रह्मास्मि' महावाक्य है। यही सर्वोच्च उपदेश है। यही ऋचाओं, यजुष, साम और अथर्वा का शिरोभाग है। जो इसको जाने बिना वेदाध्ययन करता है, वह मूर्ख है। (अ० १४)

४. अर्थज्ञान का महत्त्व – अर्थज्ञान के बिना वेदों का अध्ययन मूर्खता है। जो वेदार्थ का ज्ञानी है, उसके सारे पाप कट जाते हैं और वह मोक्ष का अधिकारी होता है।

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूद् , अधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम् । योऽर्थज्ञ इत् सकलं भद्रमश्नुते, नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा । (अ० १४)

५. आचार्यों की वंश परंपरा – अध्याय १५ में आचार्यों की वंश-परंपरा इस प्रकार दी गई है – स्वयंभू ब्रह्मा, प्रजापति, इन्द्र, विश्वामित्र, देवरात, साकमश्व, व्यश्व, विश्वमना, सुम्नयु, बृहद्दिवा, प्रतिवेश्य, सोम, सोमपा, सोमापि, प्रियव्रत, उद्दालक, आरुणि, कहोल, कौषीतकि और गुण शांखायन। इस गुण शांखायन से ही

शांखायन आरण्यक की परंपरा आगे चली। कौषीतकि शांखायन के गुरु हैं। अतः यह आरण्यक गुरु शिष्य दोनों का सम्मिलित प्रयास है।

३. बृहदारण्यक—

यह शुक्ल यजुर्वेदीय आरण्यक है। यह शतपथ ब्राह्मण के अन्तिम १४वें कांड के अन्त में दिया गया है। इसको आरण्यक की अपेक्षा उपनिषद् के रूप में अधिक मान्यता प्राप्त है। इसका विवरण उपनिषद् के प्रकरण में दिया गया है। इसमें आत्मतत्त्व की विशद व्याख्या है।

४. तैत्तिरीय आरण्यक

तैत्तिरीयारण्यक

प्रस्तुत आरण्यक में दस प्रपाठक हैं। इन्हें सामान्यतया 'अरण' संज्ञा प्राप्त है। प्रत्येक प्रपाठक का नामकरण इनके आद्य पद से किया जाता है, जो क्रमशः इस प्रकार हैं — भद्र, सहवै, चिति, युज्ते, देव, वै, परे, शिक्षा, ब्रह्मविद्या, भृगु तथा नारायणीय। इनमें से प्रथम प्रपाठक को 'भद्र' नाम से अभिहित किया जाता है, क्योंकि उसका प्रारम्भ— 'भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः' मन्त्र से हुआ है। सप्तम, अष्टम और नवम प्रपाठकों को मिलाकर तैत्तिरीय उपनिषद् सम्पन्न हो जाती है। दशम प्रपाठ की प्रसिद्धि 'महानारायणीय उपनिषद्' के रूप में है। इस प्रकार व्यावहारिक दृष्टि से मूल आरण्यक छह प्रपाठकों में ही है। प्रपाठकों का अवान्तर विभाजन अनुवाकों में है। प्रथम छह प्रपाठकों की अनुवाक—संख्या इस प्रकार है — 32 + 20 + 22 + 42 + 22 232 प्रथम प्रपाठक में आरुणकेतुक नामक अग्नि की उपासना तथा तदर्थ अष्टकाचयन का निरूपण है।

यह कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय शाखा का आरण्यक है। इसमें १० प्रपाठक (अरण) या परिच्छेद हैं। प्रपाठकों के उप विभाग अनुवाक हैं। प्रपाठकों का नामकरण उनके प्रथम पद के आधार पर किया गया है। १० प्रपाठकों के नाम ये हैं:— १. भद्र, २. सह वै, ३. चिति, ४. युज्जते, ५. देव वै, ६. परे, ७. शिक्षा, ८. ब्रह्मविद्या, ९. भृगु, १०. नारायणीय। प्रथम प्रपाठक 'भद्रं कर्णेभिः' मंत्र से प्रारम्भ हुआ है, अतः इस प्रपाठक का नाम 'भद्र' है। इसी प्रकार अन्य प्रपाठकों के नाम हैं।

प्रपाठकों के अनुसार वर्ण्य विषय इस प्रकार हैं:—

प्रपाठक १— इसमें आरुण—केतुक नामक अग्नि की उपासना और तदर्थ इष्टका चयन का वर्णन है।

प्रपाठक २— इसमें स्वाध्याय और पंच महायज्ञों का वर्णन है।

प्रपाठक ३— इसमें चातुर्होत्र चिति से संबद्ध मंत्र हैं।

प्रपाठक ४— इसमें प्रवर्ग्य होम से संबद्ध मंत्र हैं।

प्रपाठक ५— इसमें यज्ञ संबन्धी कतिपय संकेत दिए गए हैं। प्रपाठक ६ इसमें पितृमेध—संबन्धी मंत्रों का संकलन है। इसमें ऋग्वेद के भी मंत्र दिए गए हैं।

प्रपाठक ७—८ यह 'तैत्तिरीय उपनिषद्' है।

प्रपाठक १० यह 'महानारायणीय उपनिषद्' है। इसको खिलकांड मानते हैं।

तैत्तिरीय आरण्यक के कुछ विशिष्ट सन्दर्भ

आरण्यक परिचय
तथा प्रमुख
आरण्यक

२. पंच महायज्ञ : इसमें पाँच महायज्ञों के दैनिक अनुष्ठान का निर्देश है। पाँच महायज्ञ हैं: १. ब्रह्मयज्ञ (संध्या), २. देवयज्ञ (अग्निहोत्र), ३. पितृयज्ञ (मातृ पितृ सेवा, इसे श्राद्ध तर्पण भी कहते हैं)।, ४. मनुष्ययज्ञ (अतिथि सत्कार), ५. भूतयज्ञ (बलिवैश्वदेव यज्ञ, पशु पक्षियों आदि को अनादि देना) इन्हें प्रतिदिन करने का निर्देश है 'पंच वा एते महायज्ञाः सतति प्रतायन्ते ।

३. स्वाध्याय— वेदमंत्रों के अध्ययन को स्वाध्याय कहते हैं। यदि एक मंत्र का भी नियम से अध्ययन किया जाता है तो स्वाध्याय पूर्ण माना जाता है।

५. मैत्रायणीय आरण्यक—

यह कृष्ण यजुर्वेदीय मैत्रायणीय शाखा का आरण्यक है। इसको 'मैत्रायणीय उपनिषद्' भी कहते हैं। यह मैत्रायणी संहिता के परिशिष्ट के रूप में अन्त में उपलब्ध है (सातवलेकर संस्करण) —

इसमें ७ प्रपाठक हैं। प्रपाठक खंडों में विभक्त हैं। वर्ण्य विषय ये हैं:

प्रपाठक १ ब्रह्मयज्ञ । राजा बृहद्रथ को वैराग्य और मुनि शाकायन्य द्वारा उसे उपदेश।

प्रपाठक २: शाकायन्य द्वारा ब्रह्मविद्या का उपदेश ।

प्रपाठक ३ : जीवात्मा के स्वरूप का वर्णन, कर्मफल और पुनर्जन्म।

प्रपाठक ४ : ब्रह्म—सायुज्य प्राप्ति के उपाय ।

प्रपाठक ५ : कौत्सायनी स्तुति । ब्रह्म की नानारूपों में स्थिति।

प्रपाठक ६ ओम् प्रणव, उद्गीथ और गायत्री की उपासना । आत्मयज्ञ का वर्णन । षडंग योग, शब्दब्रह्म, निर्विषय मन से मोक्षप्राप्ति ।

प्रपाठक ७ — आत्म स्वरूप वर्णन।

मैत्रायणीय आरण्यक के विशिष्ट सन्दर्भ

१. ओम् का महत्त्व — 'ओम्' ही प्रणव और उद्गीथ है। वही ब्रह्म है। ओम् के द्वारा ब्रह्म की उपासना करें।

य उद्गीथः स प्रणवः, एतद् ब्रह्म । तस्माद् 'ओम्' इत्यनेन एतद् उपासीत । (६.४)

२. ब्रह्म के अनेक रूप ब्रह्म ही ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, प्रजापति, अग्नि, वायु, इन्द्र और चन्द्रमा है।

५. मन का महत्त्व : मन ही सारी बौद्धिक क्रियाओं का संचालक है । देखना, सुनना आदि मन के कारण ही होता है। अतएव काम, संकल्प, विचिकित्सा (सन्देह), श्रद्धा अश्रद्धा, धैर्य अधैर्य, धी (बुद्धि, ज्ञान), ही (लज्जा), भी (भय), ये सब मन के ही स्वरूप हैं। (मैत्रा० ६.३०)

६. तलवकार आरण्यक—

यह सामवेद की जैमिनी शाखा का आरण्यक है। इसको 'जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण' भी कहते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों के वर्णन में इसका उल्लेख किया गया है। इसमें चार अध्याय हैं । अध्यायों के अवान्तर भेद अनुवाक और खंड हैं।

1. ओम् और गायत्री का महत्त्व : ओम् परम ज्ञान और बुद्धि का कारण है। ओम् से ही गायत्री की उत्पत्ति हुई है। गायत्री से ही प्रजापति और देवों ने अमरता प्राप्त की।

तद् एतदमृतं गायत्रम् । एतेन वै प्रजापतिरमृतत्वम् अगच्छत् । एतेन देवाः । एतेन ऋषयः । (जैमि० उप० ब्रा० ३.७.३)

ब्रह्म उ गायत्री (जैमि० उप० ब्रा० १.१.८)

गायत्री के रूप में यह पवित्र ज्ञान सर्वप्रथम कश्यप ऋषि को प्राप्त हुआ। गायत्री की उपासना करनी चाहिए।

2. वेदों से सृष्टि प्रक्रिया — इसमें वर्णन है कि सृष्टि प्रक्रिया का प्रारम्भ वेदों से हुआ।
७. **देवशास्त्रीय एवं ऐतिहासिक तथ्य** — इसमें देवशास्त्र से संबद्ध अनेक आख्यान दिए गए हैं। अनेक ऐतिहासिक तथ्यों का भी इसमें समावेश है।

6 आरण्यकों का सारांश—

इस इकाई में आरण्यकों का परिचय, आरण्यकों का महत्त्व, आरण्यकों का प्रतिपाद्य विषय, आरण्यकों के रचयिता आदि विषयों का विवरण दिया गया है। आशा है कि यह इकाई अध्ययनकर्ताओं के लिए वैदिक साहित्य के महत्वपूर्ण आरण्यकार ग्रन्थों के विषय में ज्ञानवर्धक होगी।

आरण्यक — साहित्य : संक्षिप्त मूल्याङ्कन

उपर्युक्त पृष्ठों में आरण्यक—साहित्य की जो विशद समीक्षा की गई, उसे निष्कर्ष रूप में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है :

1. यज्ञ संस्था के आध्यात्मिक और प्रतीकात्मक पक्षों की अभिव्यक्ति की दिशा में यह साहित्य महीयसी भूमिका का निर्वाहक है।
2. उपनिषदों के तात्त्विक अनुशीलन के सन्दर्भ में आरण्यक साहित्य पूर्वपीठिका का निर्माता है।
3. अनेक नये ऐतिहासिक और सांस्कृतिक तथ्यों की प्रस्तुति के कारण यह साहित्य विशेष उपादेय है।
4. ब्राह्मणों और उपनिषदों के मध्य की भाषा और शैली के विकास क्रम का इससे परिज्ञान होता है।
5. नैतिकता और आचार—दर्शन की दृष्टि से आरण्यक साहित्य मानवीय मानस के ऊर्ध्वारोहण में अति सहायक है।

बोध प्रश्न —

1. अधोलिखित प्रश्नों के सही उत्तर पर (✓) का चिन्ह लगाइये
 - 1) ऋग्वेद में कितने आरण्यक हैं? 2/4
 - 2) ब्राह्मण ग्रंथों के बाद कौन से ग्रन्थ का स्थान आता है? उपनिषद्/आरण्यक
 - 3) तैत्तिरीय आरण्यक किस वेद का है? ऋग्वेद/यजुर्वेद

- 4) तलवकार आरण्यक किस वेद से है? सामवेद/अथर्ववेद
- 5) अहम् ब्रह्मास्मि' वाक्य का महत्व किस आरण्यक में है?शांखायन/तलवकार

अभ्यास प्रश्न 2

- 1) आरण्यक शब्द का अर्थ स्पष्ट कीजिए?
- 2) आरण्यकों का महत्व वर्णित कीजिए?
- 3) वेदों में कितने आरण्यक हैं? वर्णित कीजिए।
- 4) अरण्यकों का प्रतिपाद्य विषय बताइए?

अभ्यास प्रश्नों एक के उत्तर

1-2 / 2 आरण्यक / 3-यजुर्वेद / 4-सामवेद/5-शांखायन



ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 5 उपनिषद् परिचय तथा प्रमुख उपनिषद्

इकाई की रूपरेखा

- 5.0 उद्देश्य
- 5.1 प्रस्तावना
- 5.2 उपनिषद् का अर्थ
- 5.3 उपनिषद् की परिभाषाएँ तथा परिचय
- 5.4 प्रमुख उपनिषद्
- 5.5 सारांश
- 5.6 शब्दावली
- 5.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 5.8 बोध/ अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.0 उद्देश्य

संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक विश्लेषण पाठ्यक्रम से सम्बन्धित प्रथम खण्ड की यह पाँचवीं इकाई है। इस इकाई के अध्ययन से आप:-

- उपनिषदों का ज्ञान प्राप्त कर पायेंगे।
- उपनिषदों का प्रतिपाद्य विषय जान सकेंगे।
- प्रमुख उपनिषदों से परिचित होंगे।
- उपनिषद् ज्ञान के स्रोत क्यों हैं, जान पायेंगे।
- भारतीय दर्शन में व्याप्त आध्यात्मिकता को जान सकेंगे।
- 'दर्शन' के क्षेत्र में ज्ञान, रुचि, उत्साह का विस्तार कर सकेंगे।
- उपनिषद् सभी दर्शनों का मूलाधार है, जान पायेंगे।
- प्रमुख उपनिषदों में प्रतिपादित गूढ़ तत्वों को आसानी से समझ पायेंगे।
- उपनिषदों का अध्ययन कर उसे अपने शब्दों में व्यक्त कर पायेंगे।

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई उपनिषद् से सम्बन्धित हैं। उपनिषद् भारतीय आध्यात्मिक चिंतन के मूलाधार है जिन्हें 'ब्रह्मविद्या' नाम से भी जाना जाता है। वैदिक वाङ्मय में संहिता ब्राह्मण, आरण्यक के पश्चात् 'उपनिषद्' का स्थान है। वेदों का सार ही उपनिषदों का विषय है। मनुष्य एक जिज्ञासु जीव है, जिसके मन में लगातार असंख्य प्रश्न उठते रहते हैं कि सृष्टि की रचना कैसे हुई ? किसके द्वारा हुई ? आत्मा का अस्तित्व वास्तव में है क्या ? परमात्मा है क्या ? परमतत्त्व है तो उत्पत्ति किसके द्वारा, कब और कैसे हुई ? क्या पुनर्जन्म होता है ? मरने के बाद क्या होता है ? आत्मा है तो उसकी

स्थिति मरने पर कहाँ होती है इत्यादि-इत्यादि। उपनिषदों में उपरोक्त वर्णित जिज्ञासाएँ और भी अन्य जिज्ञासाओं के निवारणार्थ ऋषियों द्वारा खोजे गए उत्तर हैं, जो अनेक वर्षों के गंभीर चिंतन, मनन का परिणाम हैं। उपनिषदों को बोधगम्य बनाने के लिए शंकराचार्य द्वारा इन पर भाष्य लिखा है, जो उपनिषदों के गूढ़ रहस्यों को सरल शैली में हमारे सम्मुख रखते हैं।

यद्यपि प्रत्येक दर्शन ने अपना वर्ण्य विषय उपनिषद् में ही खोजा है, अतः उपनिषद् प्रत्येक दर्शन का उद्गम स्थल है परन्तु वेदान्त का सम्पूर्ण कलेवर ही उपनिषद् है। डॉ. हरिदत्त शास्त्री ने वेदान्त को उपनिषद् के सुपुत्र की संज्ञा (उपमा) दी है। पिता पुत्र के पारस्परिक अन्तर के समान वेदांत और उपनिषद् में थोड़ा सा विभेद है। उपनिषदों में जो सिद्धान्त यत्र-तत्र असम्बद्ध अवस्था में उपलब्ध हैं, तर्क की कसौटी पर कसने का तरीका वेदान्त में अलग है, वहाँ उन्हीं सिद्धान्तों को सुसम्बद्ध क्रम में, तर्क द्वारा स्थापित किया है –

वेदान्तवाक्यकुसुमग्रन्थनार्थत्वात् सूत्राणाम्

वेदान्तवाक्यानि हि सूत्रेरुदाद्वत्य विचार्यन्ते (ब्रह्मसूत्र शाङ्करभाष्य)

वेदान्त दर्शन का परिचायक सर्वप्रथम ग्रन्थ 'वेदान्तसूत्र' है, जिसे 'ब्रह्मसूत्र' भी कहा जाता है। बादरायण द्वारा विरचित 'ब्रह्मसूत्र' ज्ञानकाण्ड प्रधान है जिसे उत्तर मीमांसा कहा जाता है जबकि पूर्व मीमांसा कर्मकाण्ड प्रधान है।

सूत्र 1.1.2 जन्माद्यस्य यतः अर्थात् इस सूत्र में जगत के जन्म आदि (उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय) जिससे होते हैं, वह ब्रह्म है। संसार को उत्पन्न करने में, स्थिति में तथा प्रलय का मूल कारण ब्रह्म को ही बताया है। 'जन्माद्यस्य' के शारीरिक भाष्य में शंकराचार्य ने अद्वैत स्वरूप ब्रह्म की निम्न परिभाषा दी है –

“अस्य जगतो नाम रूपाम्यां व्याकृतस्य अनेककृत भोद्रमतृसयुस्य प्रतिनियतदेशकाल निमित क्रिया फलाश्रयस्य मनसा अपि अचिन्त्यरचनारूपस्य जन्मस्थिति भंग यतः सर्वज्ञात् सर्वशक्तेः करणाद भवदि, तद् ब्रह्म” (ब्रह्मसूत्र शा.भा. 01.01.02)

अर्थात् नाम, रूप से अव्यक्त, अनेक कलाओं व भावनाओं से युक्त ऐसे क्रिया और फल के आश्रय देश, काल, निमित्त व्यवस्थित है, मन से जिसकी रूप रचना का विचार नहीं किया जा सकता, ऐसे जगत की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय में वह सर्वज्ञ, शक्तिमान बल ही कारण है। अतः ब्रह्म सर्वव्यापक, अधिष्ठान, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, शुद्ध, चैतन्य, एक, नित्य व कूटस्थ परमतत्त्व है। वेदान्त सूत्रों का अधिष्ठान उपनिषद् है। उपनिषदों में मुख्य रूप से ब्रह्म के स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है। विविध आध्यात्मिक प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने के लिए जब मनीषियों ने एकांत में ध्यान योग से निदिध्यासन किया, तब उन्होंने एक देवात्म शक्ति को देखा। इसी शक्ति को उन्होंने सत्, चित्, आनंद या ब्रह्म नाम से पुकारा (अखण्डं सच्चिदानन्दमवाङ् मनसगोचरम्। (वेदान्तसार)। इस ब्रह्म को अलग अलग रूप देकर अलग अलग उपनिषदों में विवेचन किया।

वैदिक वाङ्मय की शृंखला में संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और अन्त में “उपनिषद्” आते हैं। इसी क्रम के अन्त में आने के कारण यह 'वेदान्त' भी कहे जाते हैं। उपनिषद् ज्ञानकोष कहे जाते हैं क्योंकि यह ऐसे विचार व उपदेश है जो व्यक्ति की दार्शनिक जिज्ञासा शांत कर सत्य के पथ पर अग्रसर करते हैं।

उपनिषद् शब्द उप और नि उपसर्ग, सद् धातु, क्विप् प्रत्यय लगाकर बना है। 'उप' का अर्थ है समीप, 'नि' का अर्थ है निश्चयपूर्वक या निष्ठापूर्वक और सद् का अर्थ है – बैठना अर्थात् गुरु के समीप निष्ठापूर्वक बैठकर ज्ञान की प्राप्ति करना। आदि शंकराचार्य ने कठोपनिषद् के शांकरभाष्य में सद् धातु के तीन अर्थ बताये हैं – 'सदेर्धातोर्विशरणगत्यवसादनार्थस्य' (1) विशरण का अर्थ होता है नाश होना अर्थात् जिसके द्वारा मनुष्य की अविद्या का नाश होता है। (2) गति – गति का तात्पर्य है पाना या जानना अर्थात् जिसके द्वारा ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है अथवा परमतत्त्व को जाना जाता है। (3) अवसादन – अवसादन का अर्थ है शिथिल होना अर्थात् वह विद्या जिसके द्वारा मनुष्य के दुःखों में शिथिलता आती है या नाश होता है।

उपरोक्तानुसार यह सिद्ध होता है कि उपनिषद् वह विद्या (ज्ञान) है जिससे व्यक्ति की अविद्या (अज्ञान) का नाश होता है, परमतत्त्व (ब्रह्म) की प्राप्ति और दुःखों का नाश होता है। जिस विद्या को पाकर व्यक्ति जीवन और मृत्यु के चक्र से छुटकारा पाता है। पाप अथवा अज्ञान नाश कर जो हमें सच्चा ज्ञान कराये, वही उपनिषद् है। सच्चे ज्ञान से तात्पर्य जिस ज्ञान को प्राप्त कर जन्म और मृत्यु के बंधन से छुटकारा मिले। क्योंकि भारतीय संस्कृति के चार पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) में 'मोक्ष' से ही सम्बन्धित है 'उपनिषद्'। अतः वह तत्त्वज्ञान जिसे पाकर मनुष्य 'मोक्ष' प्राप्त करे वही उपनिषदों का ध्येय है। जिसके द्वारा ब्रह्म की समीपता निश्चित ही प्राप्त हो उसे उपनिषद् कहा जाता है –

“उप ब्रह्म सामीप्यं निश्चयेन

सीदति प्राप्नोति यथा सा उपनिषद्।”

5.3 उपनिषद् की परिभाषाएँ तथा परिचय

भारतीय और विभिन्न पाश्चात्य विद्वानों ने उपनिषद् की विविध परिभाषाएँ दी हैं जो निम्न रूपेण है :—

अष्टाध्यायी में जीविकोपनिषदावौपम्ये सूत्रानुसार (1.4.49) उपनिषद् शब्द परोक्ष अथवा रहस्य के अर्थ में हुआ है।

अमरकोश (3.99) में 'धर्मरहस्युपनिषत् स्यात्' अर्थात् उपनिषद् शब्द गूढ़, धर्म और रहस्य के अर्थ में प्रयुक्त होता है इसलिए उपनिषद् को परोक्ष या रहस्यमय ज्ञान का स्रोत कह सकते हैं।

ओल्डनवर्ग ने उपनिषद् का अर्थ पूजा की एक पद्धति भी किया है।

19वीं शताब्दी में जर्मन विद्वान शोपेनहर् (Schopenhauer) को उपनिषदों में रुचि हुई और उन्होंने उपनिषदों का अनुवाद किया। उनका कथन है –

"In the world there is no study so beneficial and so elevating as that of upanishads (they) are a product of the highest wisdom -- it is destined sooner or later to become the faith of the people"

अर्थात् सारे संसार में ऐसा कोई स्वाध्याय नहीं है जो उपनिषदों के समान उपयोगी और उन्नति की ओर ले जाने वाला हो। वे उच्चतम बुद्धि की उपज हैं। आगे या पीछे एक दिन ऐसा होना ही है कि यही जनता का धर्म होगा।

उपनिषद् वेदान्तदर्शन के आदिस्त्रोत हैं और ये ऐसे निबन्ध हैं जिनमें मुझे मानवीय भावना अपने उच्चतम शिखर पर पहुँची मालूम होती है।

इस प्रकार उपनिषद् शब्द का अर्थ रहस्य ज्ञान या ब्रह्म ज्ञान या अध्यात्म विद्या का ज्ञान है। शंकराचार्य ने 'उपनिषद्' शब्द की व्याख्या करते हुए बताया है कि – “जो मनुष्य भक्ति एवं श्रद्धा के साथ आत्मभाव से ब्रह्मविद्या को प्राप्त करता है, वह विद्या उनके जन्म, मरण, रोगादि अनर्थों को नष्ट करती है और अविद्या (अज्ञान) को नष्ट कर परब्रह्म को प्राप्त कराती है।”

उपनिषद् वैदिक युग के अंतिम भाग हैं। वैदिक साहित्य में संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् समाविष्ट हैं। उपनिषद् में दार्शनिक तथ्यों की आलोचना है। संहिताओं में संकेतित दार्शनिक विचारधाराओं का पल्लवित व पुष्पित रूप उपनिषदों में दृष्टिगोचर होता है। उपनिषदों में ब्रह्म, आत्मा, जीव, जगत, पुनर्जन्म, मुक्ति, कर्मफल, स्वर्ग, नरक इत्यादि मुख्य विषय समाहित हैं। उपनिषद् भारतीय सभ्यता की अमूल्य धरोहर है क्योंकि उपनिषद् ही समस्त भारतीय दर्शनों का मूल स्रोत हैं चाहे वह वेदांत हो, गीता हो, योगदर्शन हो अथवा बौद्ध दर्शन। जैसा की सर्वविदित है उपनिषद् भारतीय आध्यात्मिक चिंतन के मूलाधार हैं। यह भारतीय आध्यात्मिक दर्शन के वे स्रोत हैं जिनके द्वारा ज्ञान पिपासुओं को उनकी जिज्ञासाओं के उत्तर प्राप्त होते हैं। उपनिषदों के माध्यम से ही अज्ञात की खोज के प्रयास किए गए हैं जो वर्णन से परे है, परम तत्त्व उस ब्रह्म को देखने, समझने, वहाँ तक पहुँचने के प्रयास उपनिषदों में किये गये हैं। उपनिषदों की 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः' इस आशावादी श्रुति में ऋषि का अभिप्राय है कि जिजीविषा, जीने की इच्छा जिस प्रकार अटल और अपरित्याज्य है, उसी प्रकार कर्तव्य कर्म करते रहना भी अटल और अपरित्याज्य है। व्यक्ति को 100 वर्षों की आयु तक; (जब तक जीवित रहे कर्तव्य कर्मों का पालन अनिवार्य है इस आयुष्यक्रम का कर्तव्य कर्मों के आधार पर विभाजन आश्रम व्यवस्था का मूल उद्देश्य है। यह अवधारणा ही आश्रम व्यवस्था की जनक होनी चाहिए। वेदान्त अथवा उत्तर मीमांसा मुख्यतः उपनिषद् के तत्त्व ज्ञान को प्रख्यापित करते हैं। क्षणभंगुर दृश्यमान जगत का आधार तत्त्व ब्रह्म है। उपनिषदों में इस ब्रह्म को निर्गुण, निराकार, सर्वज्ञ, अखण्ड, एकरस, आनन्दस्वरूप, अजर इत्यादि पर्यायों द्वारा पुकारा गया है। यह ब्रह्म ही संपूर्ण जगत का उपादान व निमित्त कारण है। संसार में जो कुछ भी है वह ब्रह्म या परमात्मा ही है, वही चैतन्य रूप में एकमात्र ज्ञान है स्वयं निर्गुण है परंतु ज्ञान उसका स्वरूप है। उपनिषदों के सिद्धान्तों को आधार बनाकर महर्षि बादरायण ने ब्रह्म सूत्र की रचना की, जिसमें लगभग 550 सूत्र हैं। उपनिषदों का सार यही है कि परम तत्त्व ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त कर द्वैत का नाश और अद्वैत की स्थापना करना। अद्वैतवाद का संस्थापक व पोषक शंकराचार्य जी को माना जाता है। अतः उपनिषद् ही समस्त भारतीय दर्शनों के मूल में विद्यमान हैं।

उपनिषदों की संख्या के विषय में मतभेद पाया जाता है। 'मुक्तिकोपनिषद्' के अनुसार उपनिषदों की संख्या 108 और महाकाव्यकोष में 223 मानी गयी है। ऋग्वेद से सम्बन्धित 10, शुक्ल यजुर्वेद से सम्बन्धित 19, कृष्ण यजुर्वेद से सम्बन्धित 32, सामवेद से सम्बन्धित 16 तथा अथर्ववेद से सम्बन्धित 31 उपनिषद् हैं। शंकराचार्य ने उपनिषदों की संख्या 10 मानी है। मुक्तिकोपनिषद् में वर्णित प्रमुख उपनिषदों का सामान्य परिचय आपको दिया जायेगा, जो निम्नवत है—

वह है ईशावास्योपनिषद्, केनोपनिषद्, कठोपनिषद्, प्रश्नोपनिषद्, मुण्डकोपनिषद्, माण्डूक्योपनिषद्, तैत्तिरीयोपनिषद्, ऐतरेयोपनिषद्, छान्दोग्योपनिषद् तथा बृहदारण्यकोपनिषद्। मुख्यतः उपरोक्त ही मुख्य उपनिषद् है जिन पर आदि शंकराचार्य का भाष्य भी मिलता है। इसके अतिरिक्त जब प्रमुख उपनिषद् 11 माने जाते हैं तो उसमें ‘श्वेताश्वतरोपनिषद्’ की भी गणना की जाती है। हमारा मुख्य ध्येय है ‘तैत्तिरीयोपनिषद्’ के विशिष्ट भाग का अध्ययन करना। अतः हम अन्य उपनिषदों का सामान्य ज्ञान ही प्राप्त करेंगे।

5.4 प्रमुख उपनिषद्

- 1) **ईशावास्योपनिषद्** — उपनिषदों की श्रृंखला में सर्वप्रथम उपनिषद् ‘ईशावास्योपनिषद्’ है। पद्यात्मक यह उपनिषद् लघुकाय है जो शुक्ल यजुर्वेद की काण्व शाखा का 40वाँ अध्याय है। ‘ईशावास्योपनिषद्’ में सर्वव्यापक परमतत्त्व का निरन्तर स्मरण करते हुए निष्काम भाव से कर्म करने का विधान किया है तथा तत्त्वज्ञान के फल का भी निरूपण किया गया है। परब्रह्म की प्राप्ति के साधन ‘ज्ञान’ को ‘विद्या’ तथा भौतिक सुखों की प्राप्ति के साधन ‘कर्म’ को ‘अविद्या’ नाम से बताया है और जो साधक ज्ञान और कर्म दोनों के तत्त्व को भली भाँति समझकर, उनका अनुष्ठान करता है, वही साधक दोनों साधनों के द्वारा सर्वोत्तम तथा वास्तविक फल प्राप्त कर सकता है, अन्यथा नहीं। विद्या अविद्या दोनों के अनुष्ठान से विद्या (ज्ञान) द्वारा आनन्दमय परब्रह्म को प्रत्यक्ष जान लेता है और अविद्या (कर्मों) द्वारा जन्म और मृत्यु के बन्धन से छूट जाता है। शरीर त्याग के समय उपासक कहता है, हे प्रभु, आप अपने ऊपर पड़ा हुआ आवरण हटा दीजिए, जिससे मुझे आपका दर्शन प्राप्त हो सके।

18 मन्त्रों में निबद्ध इस उपनिषद् का नामकरण इसके प्रथम मंत्र के आधार पर किया गया है —

“ईशावास्यामिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्”

यजुर्वेद के प्रत्येक अध्याय का उद्देश्य विशेष होता है उसी के अनुसार उसका नाम होता है। ईशावास्योपनिषद् में ईश्वर की विद्या अथवा आत्मा का ज्ञान निरूपित है। इसलिए इसका नाम ईशावास्योपनिषद् पड़ा है। इस उपनिषद् का प्रारम्भिक मंत्र ब्रह्म विद्या का सार कहा जा सकता है। इसमें बताया है कि समस्त जगत् परमात्मा (ब्रह्म) से परिपूर्ण है, इस संपूर्ण जगत् का कोई भी अंश परमात्मा से रहित नहीं है। अतः सांसारिक भोग विषयों का त्यागपूर्वक भोग करने की बात कही है।

2) केनोपनिषद्

प्रस्तुत उपनिषद् सामवेद के ‘तलवकार ब्राह्मण के अन्तर्गत आता है। तलवकार को ‘जैमिनीय उपनिषद्’ भी कहा जाता है और ब्राह्मण के अन्तर्गत होने से इसे ब्राह्मणोपनिषद् भी कहते हैं। इस उपनिषद् के अनुसार परमतत्त्व (ब्रह्म) को समझना बहुत ही आवश्यक कार्य है। अतः उस परमतत्त्व को समझाने के लिए गुरु—शिष्य संवाद रूप में गूढ़ रहस्य का विवेचन किया गया है। चार खण्डों में विभक्त केनोपनिषद् के प्रथम खण्ड में शिष्य द्वारा यह प्रश्न करने पर कि इन्द्रियों का प्रेरक तत्त्व कौन है ? गुरु शिष्य को बताते हैं कि सर्वप्रेरक तत्त्व परब्रह्म है।

द्वितीय खण्ड में जीवात्मा को परमात्मा का अंश बताया गया है तथा ब्रह्मतत्त्व को इसी जन्म में जान लेने की आवश्यकता का प्रतिपादन किया है। तीसरे और चतुर्थ खण्ड में परब्रह्म परमात्मा को सबका प्रेरक, सबका कर्त्ता, परब्रह्म उपासना के प्रकार और फल बहुत ही उदात्त और गंभीर शैली में वर्णित है।

केनोपनिषद् में बताया है कि यदि इस देह में रहते उस ब्रह्म को जान लिया तो सुख है अन्यथा नहीं क्योंकि 84 लाख योनियों में भ्रमण करने के बाद मनुष्य योनि प्राप्त होती है। मनुष्य योनि में ही परमतत्त्व (ब्रह्म) को जाना जा सकता है। केनोपनिषद् का अध्ययन करने के बाद पाठक को लगेगा मैंने ब्रह्म को जान लिया, यहाँ जान लेने का मतलब ज्ञान प्राप्त करने से नहीं है अपितु उसे व्यवहार में उतारने से भी है। जब साधक नित्य, अचल, अनन्त, परम आनन्द स्वरूप का चिंतन करता है तो वह आनन्दस्वरूप सर्वप्रिय परमात्मा का साक्षात्कार कर स्वयं भी आनंदमय हो जाता है।

3) कठोपनिषद्

कठोपनिषद् कृष्णयजुर्वेद की कठ शाखा से सम्बन्धित प्रसिद्ध उपनिषदों में से एक है। इस कठोपनिषद् का विभाजन दो अध्यायों में हुआ है और प्रत्येक अध्याय तीन तीन वल्लियों में विभाजित है। कठोपनिषद् में नचिकेता और यम के संवाद का प्रसिद्ध उपाख्यान है। इसमें वाजश्रवस विश्वजित यज्ञ की समाप्ति पर अपना सर्वस्व दान करते हैं जिसमें उनके द्वारा बूढ़ी, अशक्त गायें दान करते देख उनके अबोध बालक नचिकेता के मन में प्रश्न उठता है कि इन असमर्थ गायों को दान करने का क्या औचित्य है ? क्योंकि दान लेने वाले को इन गायों को लेने से क्या लाभ मिलेगा ? यह गायें दूध देने में असमर्थ हैं, चारा भी नहीं खाती हैं इसलिए ऐसी गायों को प्राप्त कर कोई कैसे लाभान्वित होगा ? ऐसी स्थिति में वह अपने पिता से प्रश्न करता है कि आप मुझे किसे दान में देंगे क्योंकि इस दान में सभी कुछ दान करने की परम्परा है, पिता उत्तर नहीं देते, बार बार यही प्रश्न पूछने पर पिता क्रुद्ध होकर कहते हैं – “तुझे मृत्यु को देता हूँ। यह सुनकर नचिकेता पिता वचनानुसार यमलोक चला जाता है। वहाँ यम नहीं होते हैं। आने पर यमराज को ज्ञात होता है कि उनकी अनुपस्थिति में कोई ब्राह्मण बालक तीन दिन और रात बिना अन्न और जल ग्रहण किये उनकी प्रतीक्षा करता रहा। यम फलस्वरूप नचिकेता से तीन वर माँगने को कहते हैं। नचिकेता प्रथम वर में अपने पिता की प्रसन्नता और दूसरे वर में स्वर्ग की प्राप्ति का साधन अग्निविज्ञान का रहस्य माँगता है, तीसरे वर में अबोध बालक आत्मज्ञान के रहस्य को जानना चाहता है कि मृत्यु के बाद क्या होता है ? आत्मतत्त्व कैसा है ? प्रथम और द्वितीय वर यमराज उसे प्रसन्न होकर देते हैं परन्तु आत्मज्ञान विद्वानों की बुद्धि अथवा हृदय रूपी गुफा में छिपा गूढ़ रहस्य है जिसे बड़े बड़े विद्वान नहीं जान पाये। यह छोटा बालक कैसे समझ पायेगा ? इसी कारण यम उसे तरह तरह के प्रलोभन देते हैं परन्तु वह नचिकेता तो आत्मतत्त्व प्राप्ति का वर पाना चाहता है। यम उसकी परीक्षा लेते हैं तदुपरांत कठोपनिषद् के दूसरे अध्याय में उसे आत्मज्ञान देते हुए कहते हैं कि आत्मज्ञानी को अपनी इन्द्रियों पर नियंत्रण करना परम आवश्यक है। कोई भी ब्रह्म का अतिक्रमण नहीं कर सकता। सूर्य, चन्द्रमा तथा नक्षत्रगण जिससे प्रकाशित होते हैं वह ब्रह्म है, उसे ही अमृत कहते हैं। उस ब्रह्म का कोई अतिक्रमण नहीं कर सकता। मनुष्य की जब सभी कामनाएँ नष्ट हो जाती हैं, अविद्या का नाश हो जाता है, तब मनुष्य अमर पद को प्राप्त करता है। इसी जन्म में ब्रह्म का साक्षात्कार कर ब्रह्म रूप हो जाता है। यमराज कहते हैं कि हृदय की सौ नाड़ियों में से एक सुषम्ना ब्रह्मरन्ध्र की ओर गई है। जिसके द्वारा ऊपर की ओर जाने वाला मनुष्य अमरतत्त्व (मोक्ष) को प्राप्त

करता है। शेष नाडियों लोकान्तर गमन करने के लिए होती है। कठोपनिषद् में ब्रह्म विद्या को और सम्पूर्ण योग विधि को प्राप्त कर नचिकेता रात्रादि तथा मृत्यु के भय से रहित होकर ब्रह्म को प्राप्त हुआ।

4) प्रश्नोपनिषद्

प्रश्नोपनिषद् अथर्ववेद की पिप्पलाद शाखा के ब्राह्मण भाग के अन्तर्गत आता है। मुण्डकोपनिषद् में कहे हुए विषय की पूर्ति के लिए प्रश्नोपनिषद् है। इस उपनिषद् में जिज्ञासा निवारणार्थ सुकेशा आदि छः ऋषियों द्वारा छः प्रश्न पूछने पर पिप्पलाद ऋषि ने उत्तर दिया इसलिए इसका नाम प्रश्नोपनिषद् हो गया।

इस उपनिषद् के छः खण्ड हैं जो छः प्रश्न हैं। प्रथम प्रश्न में रयि और प्राण द्वारा प्रजापति से ही सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति की व्याख्या की गई है। इसमें भोक्ता अथवा प्रधान को 'प्राण' व भोग्य अथवा गौण को 'रयि' बताया है। यह 'प्राण' और 'रयि' जिसके आश्रित है उसे प्रजापति कहा है।

दूसरे प्रश्न में स्थूल देह को प्रकाशित करने वाला और धारण करने वाले प्राण को बताया है और समस्त इन्द्रियों द्वारा 'प्राण' की श्रेष्ठता का निरूपण किया है। यह प्राण ही मृत्युकाल में मनुष्य के संकल्पानुसार उसे भिन्न भिन्न लोकों में ले जाते हैं। जो लोग प्राण के रहस्य को जानकर उसकी उपासना करते हैं वे ब्रह्मलोक में जाकर कर्ममुक्ति के भागी होते हैं। तीसरे प्रश्न में प्राण की उत्पत्ति और स्थिति पर विचार किया है। प्राण भी शासक की ही भाँति भिन्न भिन्न अंगों में अपने ही अंग भूत अन्य प्राणों की नियुक्ति कर स्वयं उनका शासन करता है।

चौथे प्रश्न के उत्तर में कहा है कि आत्मा का सोपाधिक स्वरूप ही दृष्टा, श्रोता, विज्ञाता आदि है, इसका अधिष्ठान परब्रह्म है। उस ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त होने पर पुरुष उसी को प्राप्त हो जाता है।

पाँचवे अपर ब्रह्म (प्रतीक रूप) की उपासना करने वालों को कर्ममुक्ति और परब्रह्म (ओंकार) की उपासना करने वालों को परब्रह्म की प्राप्ति बताई है और एक, दो और तीन मात्राओं की उपासना से प्राप्त होने वाले भिन्न भिन्न फलों का निरूपण किया है।

सुकेशा के अन्तिम प्रश्न का उत्तर देते हुए पिप्पलाद ने मुक्तावस्था में प्राप्त होने वाले निरुपाधिक ब्रह्म का वर्णन किया है। प्रस्तुत उपनिषद् का ध्येय यही है कि तत्त्व ज्ञान की योग्यता प्राप्त हो सके, जिससे आसानी से तत्त्वज्ञान ग्रहण हो सके।

5) मुण्डकोपनिषद् –

मुण्डकोपनिषद् अथर्ववेद की शौनकी शाखा में है। इसमें तीन मुण्डक हैं और एक एक मुण्डक के दो दो खण्ड हैं। शौनकादि ने विधिवत अंगिरा मुनि के पास जाकर प्रश्न किया कि “भगवन् ! ऐसी कौन सी वस्तु है जिस एक को जान लेने पर सब कुछ जान लिया जाता है ? महर्षि अंगिरा ने परा और अपरा नामक दो विद्याओं का निरूपण किया, जिसमें ऐहिक, अनात्म पदार्थों का (भौतिक पदार्थ) ज्ञान कराने वाली 'अपरा विद्या' तथा अखण्ड, अविनाशी, परमार्थतत्त्व का ज्ञान कराने वाली विद्या 'परा विद्या' कहलाती है। मुण्डकोपनिषद् में एक वृक्ष पर परस्पर मित्रता रखने वाले दो पक्षी रहते हैं। यह दोनों पक्षी जीवात्मा और परमात्मा हैं दोनों शरीर रूपी वृक्ष का आश्रय लेते हैं। यथा –

“द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनप्नन्यो अभिच ।।” (मुण्डकोपनिषद् 3.1.1)

अर्थात् उपरोक्त मंत्र का सार यह है कि मनुष्य शरीर मानो एक वृक्ष है। इस शरीर रूपी वृक्ष में ईश्वर और जीव (दो मित्र पक्षी) शरीर रूपी वृक्ष में हृदय (घोंसले) में साथ-साथ रहते हैं। जीव अर्थात् जीवात्मा तो कर्मों के फलों का भोक्ता है जबकि ईश्वर कर्मफलों से सम्बन्धित न होकर केवल देखता रहता है। इसी प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता में भी जगत को अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष बताया है, प्रस्तुत मन्त्र में भी शरीर पीपल वृक्ष, जीवात्मा और परमात्मा दो पक्षी रूप में वर्णित है।

मुण्डकोपनिषद् में ब्रह्म की सर्वव्यापकता का वर्णन बहुत ही सुन्दर तरीके से किया है कि अमृतस्वरूप परब्रह्म ही सामने हैं, वही पीछे है, वही दाएँ, वही बाएँ, वही नीचे, वही ऊपर की ओर तथा वही ब्रह्म चारों ओर फैला है। सभी जगह वह सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म व्याप्त है। ब्रह्म ही संसार का निमित्त (सहयोगी कारण) और उपादान कारण (आधारभूत) है जैसा कि निम्न मन्त्र में भी कहा है –

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च

यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति ।

यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि

तथाक्षरात्सम्भवतीह विश्वम् ।। (मुण्डकोपनिषद् 01-01-07)

अर्थात् मन्त्र में तीन उदाहरणों द्वारा यह बात बताई गई है कि जड़ चेतनात्मक सम्पूर्ण जगत का कारण ब्रह्म ही है। पहला उदाहरण जिस प्रकार मकड़ी स्वयं अपनी लार द्वारा जाले का निर्माण करती है और स्वयं ही उसे निगल जाती है, दूसरे उदाहरण द्वारा बताया है जैसे पृथ्वी में अन्न, तृण, वृक्ष, लता (औषधियों) आदि उत्पन्न होते हैं, तीसरे उदाहरण द्वारा कहा है कि जिस प्रकार मनुष्य के जीवित शरीर में केश, रोएँ, नाखून स्वतः ही उत्पन्न होकर बढ़ते हैं, उसके लिए कोई कार्य नहीं किया जाता है, ठीक उसी प्रकार परब्रह्म परमेश्वर से यह सृष्टि स्वभाव से उत्पन्न होती है और विस्तार को प्राप्त होती है। परम तत्त्व को सृष्टि निर्माण के लिए कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता है। तीन दृष्टान्तों के माध्यम से बहुत ही सुन्दर व बोधगम्य शैली में ब्रह्म को जगत का कारण घोषित किया है। मुण्डकोपनिषद् के (3.2.8) एक अन्य मंत्र में कहा है कि जिस प्रकार नदियाँ प्रवाहित होती हुई नाम और रूप से रहित होकर समुद्र में विलीन हो जाती हैं ठीक उसी प्रकार नाम, रूप से मुक्त हुआ जीव परमतत्त्व में ही लीन हो जाता है। जीवात्मा और परमात्मा में अभेद की बात अन्य उपनिषदों में भी कही गई है। आत्मा अजर अमर है। ऐसा ज्ञान प्राप्त होने पर मनुष्य के हृदय की ग्रन्थियाँ (गाँठें) खुल जाती हैं, सारे संशय दूर हो जाते हैं और शुभ अशुभ कर्म भी नष्ट हो जाते हैं। उसके द्वारा किए कार्य बन्धन का कारण नहीं बनते हैं। इस प्रकार ज्ञान प्राप्ति से लेकर मृत्युपर्यन्त मध्य की अवस्था जीवन्मुक्तावास्था कहलाती है। उपनिषदों के अनुसार— मनुष्य ब्रह्म प्राप्ति या मोक्ष प्राप्ति इसी संसार में और इसी जीवन में ही कर सकता है।

“सत्यमेव जयति नानृतं” (मुण्डकोपनिषद् 3 मुण्डक, प्रथम खण्ड 06)

अर्थात् “सत्य की ही जीत होती है झूठ की नहीं। परमात्मा सत्य स्वरूप है अतः परम तत्त्व (परमात्मा) की प्राप्ति का साधन “सत्य” अनिवार्य तत्त्व है। यही पंक्ति ‘सत्यमेव जयते’ भारतीय न्यायालयों में भी अंकित होती है।

6) माण्डूक्योपनिषद् –

माण्डूक्योपनिषद् अथर्ववेदीय ब्राह्मणभाग के अन्तर्गत आता है जिसमें 12 मंत्र हैं। कलेवर की दृष्टि से दस उपनिषदों में सबसे कम मंत्र इसी उपनिषद् में है। गौडपादाचार्य ने इस पर कारिकाएँ लिखकर इसके महत्व को और अधिक बढ़ा दिया है। इस ग्रन्थ में चार प्रकरण हैं। आगम प्रकरण, वैतथ्य प्रकरण, अद्वैत प्रकरण और अलातशान्ति प्रकरण जिसमें 29, 38, 48, और 100 कुल 215 कारिकाएँ हैं। प्रथम प्रकरण का नाम 'आगम प्रकरण' है जिसमें जगत की उत्पत्ति के अनेक प्रयोजनों का वर्णन कर खण्डन किया है।

यह उपनिषद् अद्वैतवाद का पोषक है। प्रस्तुत उपनिषद् में भी अद्वैतवाद की स्थापना की है। जिस समय अनादि माया से सोया हुआ जीव जागता है उसी समय से उसे अजन्मा तथा स्वप्न और निद्रा से रहित अद्वैततत्त्व का बोध होता है। आगम प्रकरण में जीव और ब्रह्म की एकता तथा प्रपञ्च को माया से युक्त माना है। माया के ही कारण आत्मतत्त्व में भेद प्रतीत होता है। यह माया न सत् है न असत् है, न सदसत् है, न भिन्न है, न अभिन्न है और न भिन्न भिन्न है, न सावयव है न निरवयव है, न उभयरूप। वास्तव में स्वरूप विस्मृति ही माया है, स्वरूप ज्ञान से माया की निवृत्ति होती है जैसे – अंधेरे में रज्जु सर्पवत् भाषित होता है परन्तु रज्जु (रस्सी) का वास्तविक ज्ञान होने पर वह रज्जुरूप ही रह जाती है माया द्वारा उत्पन्न सर्प का नाश हो जाता है उसी प्रकार जीव को द्वैत की प्रतीति होती है, माया का पर्दा हटते ही एक भाग अखण्ड अद्वैत वस्तु ही अवशिष्ट रह जाती है। 'वैतथ्य प्रकरण' में द्वैत भाव का प्रतिपादन कर उसे (द्वैत को) मनोदृश्य मात्र बताया है। जो भी भेद है वह व्यवहार दृष्टि से है, परमार्थतः उसकी गन्ध भी नहीं है। 'अद्वैत प्रकरण' में बताया है कि वह ब्रह्म जन्म रहित, निद्रारहित, स्वप्न शून्य, नामरूप रहित, नित्य प्रकाश स्वरूप और सर्वज्ञ, चिंतन रहित, अचल और निर्भय आदि विशेषताओं वाला है।

'अलातशान्ति' नामक चौथे प्रकरण में बताया है कि 'अलात' का तात्पर्य है – 'मशाल' अथवा 'उल्का'। मशाल को घुमाने पर अग्नि की तरह-तरह की आकृतियाँ दिखाई देती हैं, व मशाल घुमाना रोकने पर आकृतियाँ बन्द हो जाती हैं। अग्नि की चिंगारियाँ दिखना मशाल के स्पन्दन का फल है, उसी प्रकार यह दृश्य प्रपञ्च मन के स्पन्दन के कारण प्रतीत होते हैं। प्रपञ्च की अप्रतीति और प्रतीति दोनों भ्रान्तिजनित हैं, वास्तविक रूप में न उसकी उत्पत्ति होती है और न लय। इस भ्रान्ति का आधार है 'परब्रह्म'। क्योंकि कोई भी भ्रान्ति निराधार नहीं होती है।

7) ऐतरेयोपनिषद् –

ऋग्वेद में ऐतरेय आरण्यक में दूसरे आरण्यक के चौथे, पाँचवे और छठे अध्यायों को ऐतरेय उपनिषद् कहा जाता है क्योंकि इन तीनों अध्यायों में ब्रह्म विद्या की प्रधानता है। इस उपनिषद् में तीन अध्याय हैं। उनमें से पहले अध्याय में तीन खण्ड और दूसरे, तीसरे अध्यायों में एक एक खण्ड हैं। प्रथम अध्याय के अनुसार सृष्टि के आरंभ में केवल एक परब्रह्म परमात्मा था उसने विचार किया कि प्राणियों के कर्मफल भोगों के लिए भिन्न भिन्न लोकों की रचना करूँ। तब परमतत्त्व ने अम्भ (द्युलोक तथा उसके ऊपर के लोक), मरीचि (अंतरिक्ष), मर (मृत्युलोक) और जल (पृथ्वी के नीचे के लोक) इन लोकों की रचना की। तत्पश्चात् इन लोकों की रक्षा करने वाले लोकपालों की रक्षा भी मुझे अवश्य करनी चाहिए, ऐसा विचार कर उसने जल से हिरण्यमय पुरुष को निकालकर अवयवयुक्त किया। उस पुरुष में ही पाँच ज्ञानेन्द्रिय (दो आँखें, दो कान, जिह्वा, रसना त्वक् (त्वचा) पाँच कर्मेन्द्रियाँ

— हाथ (दो हाथ), पैर (दो पैर), पाद, पायु, उपस्थ और उभयवादी इन्द्रिय मन की उत्पत्ति की गई। इन्द्रियों के साथ साथ इन्द्रियों के देवताओं की भी रचना की गई। परब्रह्म परमात्मा द्वारा रचे गये इन्द्रियों के अधिष्ठाता अग्नि आदि देवताओं के प्रार्थना करने पर कि आप हमें (इन्द्रियों को) कोई आयतन (स्थान) प्रदान कीजिए, जिसमें स्थित होकर हम अन्न भक्षण कर सकें। फलस्वरूप परब्रह्म ने उन्हें गो शरीर, फिर अश्व शरीर बनाकर दिखाया परन्तु उन्हें सन्तुष्टि नहीं मिली। मनुष्य शरीर की सभी देवताओं द्वारा स्वीकृति मिलने पर परब्रह्म की आज्ञा से सभी देवता इन्द्रियों के रूप में शरीर में विभिन्न स्थानों पर प्रविष्ट हो गये। इस प्रकार विचार करने से लेकर विविध देवताओं के शरीर में प्रविष्ट होने तक जो सृष्टिक्रम बताया है उसे 'ईश्वरसृष्टि' कहा है।

दूसरे अध्याय में आत्मज्ञान को परमपद प्राप्ति का एकमात्र साधन बताकर तीसरे अध्याय में उसी का प्रतिपादन किया है कि हृदय, मन, संज्ञान (सम्यक् ज्ञान शक्ति), आज्ञान (आज्ञा देने की शक्ति), विज्ञान (विशिष्ट रूप से जानने की शक्ति), प्रज्ञान (तत्काल जानने की शक्ति), मेधा (धारण शक्ति), दृष्टि (देखने की शक्ति), धृति (धैर्य), मति (बुद्धि), मनीषा (मनन शक्ति), जूति (वेग), स्मृति (स्मरण शक्ति), संकल्प (संकल्प शक्ति), क्रतु (मनोरथ शक्ति), असु (प्राणशक्ति), काम (काम शक्ति), और वश (स्त्री संसर्ग की अभिलाषा) ये सभी 'प्रज्ञान' के ही नाम हैं। यह सम्पूर्ण संसार प्रज्ञान में स्थित है। प्रज्ञान ही ब्रह्म हैं, जिसने इस प्रकार 'प्रज्ञान स्वरूप' परमतत्त्व को जान लिया, वह शरीर त्याग कर सदा के लिए जन्म और मृत्यु के बन्धन से छूट जाता है। ब्रह्म का सार्वत्रिक प्रतिपादन करना ही इस उपनिषद् का उद्देश्य है।

8) तैत्तिरीयोपनिषद् —

तैत्तिरीयोपनिषद् कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के अन्तर्गत तैत्तिरीय आरण्यक का एक भाग है। तैत्तिरीय आरण्यक के दस अध्यायों में से सातवें, आठवें और नौवें अध्यायों को ही तैत्तिरीय उपनिषद् कहा जाता है। यह उपनिषद् तीन अध्यायों में विभक्त है —

पहला अध्याय शिक्षावल्ली, दूसरा अध्याय ब्रह्मवल्ली अथवा ब्रह्मानन्दवल्ली और तीसरा अध्याय भृगुवल्ली कहलाता है। इन्हें शिक्षाध्याय, ब्रह्मवल्लीध्याय और भृगुवल्लीध्याय भी कहते हैं। उपनिषद् के प्रथम अध्याय शिक्षाध्याय के अनुसार जीवन यापन करने वाला व्यक्ति इहलोक और परलोक में श्रेष्ठ फलों को प्राप्त करता हुआ ब्रह्म विद्या प्राप्त करने में भी सफल होता है।

भूः (प्राण), भुवः (अपान), स्वः (व्यान), महः (अन्न) जो साधक इनको जान लेता है वह ब्रह्म को भी जान लेता है। ओउम् ब्रह्म है यह ओउम् ही प्रत्यक्ष दिखाई देने वाला सारा जगत है।

ओउम् की महिमा सभी दर्शनों द्वारा स्वीकार्य है। यदि कोई साधक ओउम् बोलकर ब्रह्म की प्राप्ति की इच्छा से अध्ययन कार्य आरंभ करता है तो वह निःसंदेह ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

- तैत्तिरीयोपनिषद् के प्रमुख सद्विचार—
- सत्यंवाद/ धर्म चर/ स्वाध्यायान्मा प्रमदः।
- सदा सत्य बोलो/ धर्म का आचरण करो/ स्वाध्याय से कभी मत चूको।
- मातृदेवो भव/ पितृदेवो भव/ आचार्यदेवो भव/ अतिथि देवो भव।

(माता को देव तुल्य समझो/ पिता को देवतुल्य समझो/ आचार्य को देव तुल्य समझो/ अतिथि को देव तुल्य समझो।)

सत्पुरुषों के उच्च आचरण का अनुसरण करना चाहिए। यही वेदों का रहस्य है। अन्न की उपेक्षा अथवा निरादर नहीं करना चाहिए। घर पर आये अतिथि की कभी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

9) छान्दोग्योपनिषद् –

छान्दोग्योपनिषद् सामवेदीय तलवकार ब्राह्मण के अन्तर्गत आता है। इस उपनिषद् में आठ अध्याय हैं जिनमें प्रथम अध्याय में विविध प्रकार की विद्या, साम, ओंकार का वर्णन, द्वितीय अध्याय में शैव उदगीथ, तृतीय अध्याय में सूर्योपासना, गायत्री वर्णन और अंगीरस द्वारा श्रीकृष्ण की अध्यात्म शिक्षा और अण्ड से सूर्योत्पत्ति का वर्णन है। चतुर्थ अध्याय में सत्यकाम जाबालि कथा का वर्णन, पंचम में जाबालि के दार्शनिक सिद्धान्त व सृष्टि सम्बन्धित तथ्य वर्णित है। षष्ठ अध्याय में आरुणि की दार्शनिकता का रोचक वर्णन, सप्तम् अध्याय सनत्कुमार और नारद का था। अष्टम् अध्याय में आत्मावगति के व्यवहारिक उपायों को बताया गया है। यह उपनिषद् बहुत गंभीर, प्राचीन व प्रौढ़ है। विश्व के सूर्य ब्रह्म को इसी तृतीय अध्याय में बताया है और सर्व खल्विदं ब्रह्म भी इसी अध्याय में है।

अद्वैत वेदान्तानुसार जीव तीन दोषों से आवृत है। सर्वप्रथम है मल अर्थात् अन्तःकरण के मलिन संस्कार जनित दोष। इनकी निवृत्ति होती है, निष्काम कर्मों के द्वारा, दूसरा दोष है चित की चंचलता। चित्त की चंचलता को दूर करने का उपाय है उपासना। तीसरा दोष है आवरण अर्थात् वास्तविक स्वरूप को अज्ञान से आवृत करना (ढकना) व इसकी निवृत्ति का उपाय है ज्ञान। साधक को संस्कार रहित होकर, निष्काम कर्मों द्वारा ज्ञान प्राप्ति के बाद ही आत्मसाक्षात्कार होता है। यद्यपि मोक्ष का साक्षात् साधन ज्ञान ही है तथापि कर्म और उपासना भी उसके साधन हैं, जिन्हें प्राप्त कर संसार और संसार बन्धन का अत्यन्ताभाव होकर सर्वत्र एक अखण्ड चिदानन्दधन सत्ता ही रह जाती है।

‘छान्दोग्योपनिषद्’ उपासना और ज्ञान का ‘समुच्चय’ है। उपनिषद् की वर्णन शैली क्रमबद्ध व युक्तियुक्त है, जिसमें मुख्य आदर्श भी दृष्टिगोचर होते हैं यथा –

1. मनुष्य आचार सम्बन्धी नियमों की उपेक्षा तभी करे जब उसके बिना प्राणरक्षा का कोई दूसरा उपाय न हो।
2. यदि उत्कृष्ट विद्या किसी ब्राह्मण के अतिरिक्त किसी द्विजाति के पास हो तो भी उसे ग्रहण किया जा सकता है।
3. व्यक्ति को अपने कर्तव्य, कर्मों का उचित रीति से पालन करना आवश्यक है।

10) बृहदारण्यकोपनिषद् –

बृहदारण्यकोपनिषद् कलेवर तथा ब्रह्मज्ञान प्रतिपादन दोनों तरह से ही अद्भुत व विस्तृत है। जिसमें छः अध्याय हैं। उस समय याज्ञवल्क्य बहुत ही तत्त्वज्ञानी और विद्वान थे। उनकी आध्यात्मिक दार्शनिक शिक्षा से सम्बन्धित इस उपनिषद् में संवाद माध्यम द्वारा कठिन विषय को आसान बनाने का प्रयास किया है, जिसमें से कुछ संवाद निम्नलिखित हैं :—

आत्मा के स्वरूप निरूपण में गार्ग्य और अजातशत्रु के मध्य संवाद, तत्त्वज्ञान शिक्षा को ग्रहण करते हुए याज्ञवल्क्य और जनकसंवाद, ब्रह्म की सर्वव्यापकता के उपदेश में याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी संवाद इत्यादि।

याज्ञवल्क्य तत्त्वज्ञाता थे उनकी दो पत्नियाँ थी कामायनी और मैत्रेयी। इन दोनों के मध्य ब्रह्मज्ञान सम्बन्धी संवाद महत्वपूर्ण हैं। बृहदारण्यकोपनिषद् आध्यात्मिक दार्शनिक उपदेश देने वाला बेजोड़ नमूना है।

उपनिषद् परिचय
तथा प्रमुख
उपनिषद्

बोध प्रश्न/ अभ्यास प्रश्न –

बोध प्रश्न – 01

निम्न प्रश्नों के सही उत्तर पर सही (✓) का निशान लगाइए और अन्त में दिये उत्तर से मिलान कीजिए।

- क) वैदिक वाङ्मय के अंतिम भाग कहलाते हैं। (संहिता/ उपनिषद्)
ख) उपनिषदों की कुल संख्या कितनी है। (130/ 108)
ग) अंतिम पुरुषार्थ क्या है ? (अर्थ/ मोक्ष)
घ) सर्वप्रथम कौन सा उपनिषद् आता है। (ईशावास्योपनिषद्, केनोपनिषद्)
ङ.) उपनिषदों में वर्णित है। (ब्रह्मज्ञान/ पुराण ज्ञान)

बोध प्रश्न – 02

मिलान कीजिए –

उपनिषद् का नाम	सम्बन्धित वेद
1) ईशावास्योपनिषद्	i) अथर्ववेद
2) केनोपनिषद्	ii) कृष्ण यजुर्वेद
3) मुण्डकोपनिषद्	iii) शुक्ल यजुर्वेद
4) ऐतरेयोपनिषद्	iv) सामवेद

बोध प्रश्न – 03

नीचे दिए गए प्रश्नों का सही उत्तर दीजिए –

- 1) कठोपनिषद् में 'यज्ञवेदी का ज्ञान' किस वर में मांगा –
i) द्वितीय ii) तृतीय iii) सप्तम् iv) प्रथम
- 2) तैत्तिरीयोपनिषद् में कुल कितनी वल्लियाँ हैं –
i) दा ii) तीन iii) चार iv) पाँच
- 3) 'सत्यमेव जयते' किस उपनिषद् से लिया है ?
i) माण्डूक्योपनिषद् ii) छान्दोग्योपनिषद्
iii) मुण्डकोपनिषद् iv) केनोपनिषद्
- 4) 'द्वा सुपर्णासयुजा' मन्त्र किस उपनिषद् से सम्बन्धित है –
i) मुण्डकोपनिषद् ii) प्रश्नोपनिषद्
iii) ईशावास्योपनिषद् iv) कठोपनिषद्

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

- 1) तैत्तिरीयोपनिषद् के प्रथम अध्याय का नाम है।
- 2) ब्रह्म की समीपता का प्राप्त ज्ञान है।
- 3) कठोपनिषद् से सम्बन्धित है।
- 4) ही संसार का कारण हैं।
- 5) वेदान्त सूत्र का अन्य नाम है।

अभ्यास प्रश्न

- 1) नचिकेता किस उपनिषद् में है ?
- 2) प्रमुख उपनिषद् कौन कौन से हैं ? नाम लिखो।

5.5 सारांश

उपर्युक्त विवेचन द्वारा स्पष्ट हो गया है कि उपनिषद् क्या है ? प्रमुख उपनिषदों से आपका परिचय हो गया है। उपनिषद् ही समस्त भारतीय दर्शनों के मूल स्रोत हैं। यदि हम दर्शन विषय में प्रविष्ट होने की इच्छा रखते हैं तो उपनिषदों का ज्ञान आधार स्वरूप हैं। मानव सदा दुःखों से पीड़ित होता रहता है इसीलिए वह चिरस्थायी सुख को खोजता रहता है, यही परमशान्ति उपनिषदों के ज्ञान में निहित है। वेद जीव की कर्म, उपासना और ज्ञान के पथ पर आगे बढ़ाते हैं और कहते हैं कि व्यक्ति जहाँ है वहीं अपने धर्मों को कुशलतापूर्वक पालन करता हुआ स्वाभाविक रूप से आगे बढ़ता जाए, यही उपनिषदों की सीख है। प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप उपनिषद् जैसे गूढ़ विषय को समझ गए होंगे कि उपनिषदों का प्रतिपाद्य क्या है? कौन सा उपनिषद् किस वेद से सम्बन्धित है क्योंकि प्रत्येक उपनिषद् किसी न किसी वेद से सम्बन्धित है। अभी तक आप उपनिषदों के कलेवर से भली भाँति परिचित हो गये होंगे, जो आगे की इकाईयों में वर्णित तैत्तिरीयोपनिषद् (भृगुवल्ली) को समझने में सहायक होगा।

5.6 शब्दावली

उपनिषद्	— गुरु के समीप बैठकर सीखी जाने वाली विद्या।
आत्मज्ञान	— आत्मा से सम्बन्धित ज्ञान।
वेदान्त	— वैदिक वाङ्मय का अंतिम भाग वेदान्त अर्थात् उपनिषद्
रहस्य	— छिपा हुआ, गुप्त।

5.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें –

- 1) उपनिषद् रहस्य, एकादशोपनिषद्— व्याख्याकार महात्मा नारायण स्वामी
- 2) ईशादि नौ उपनिषद् — गीता प्रेस, गोरखपुर।
- 3) संस्कृत साहित्य का इतिहास (वैदिक खण्ड), डॉ. प्रीति प्रभा गोयल— राजस्थानी ग्रन्थकार, जोधपुर (राज.)

- 4) संस्कृत साहित्य का इतिहास – ए.बी. कीथ (अनुवादक – डॉ. मंगलदेव शास्त्री), मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, दिल्ली।
- 5) ईशावास्योपनिषद् गीताप्रेस, गोरखपुर।
- 6) प्रश्नोपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर।
- 7) कठ उपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर।
- 8) मुण्डक उपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर।
- 9) माण्डूक्य उपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर।
- 10) छान्दोग्य उपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर।
- 11) केन उपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर।
- 12) ऐतरेय उपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर।
- 13) बृहदारण्यक उपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर।

13.8 बोध प्रश्नों / अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न – 01

- क) उपनिषद्
- ख) 108
- ग) मोक्ष
- घ) ईशावास्योपनिषद्
- ड.) ब्रह्मज्ञान

बोध प्रश्न – 02

- 1) (iii) शुक्लयजुर्वेद
- 2) (iv) सामवेद
- 3) (i) अथर्ववेद
- 4) (ii) कृष्ण यजुर्वेद

बोध प्रश्न – 03

1. (i) द्वितीय 2. (ii) तीन 3. (iii) मुण्डकोपनिषद्
4. (i) मुण्डकोपनिषद्

बोध प्रश्न – 04

1. शिक्षावल्ली शिक्षाध्याय 2. उपनिषद् 3. यजुर्वेद 4. ब्रह्म 5. ब्रह्मसूत्र

अभ्यास प्रश्न

इन प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

इकाई 6 सूत्र साहित्य अथवा वेदांग परिचय

इकाई की रूपरेखा

- 5.0 प्रस्तावना
- 5.1 वेदांग परिचय
- 5.2 शिक्षा शास्त्र
- 5.3 व्याकरण
- 5.4 निरुक्त
- 5.5 छन्दशास्त्र
- 5.6 ज्योतिष
- 5.7 कल्प (सूत्र साहित्य)
- 5.8 सारांश
- 5.9 बोध प्रश्न अभ्यास

5.0 प्रस्तावना

वेदाङ्ग एवं सूत्र साहित्य

वेदांग एवं सूत्र साहित्य के अन्तर्गत वैदिक साहित्य के वेदांगों का एवं सूत्र साहित्य का परिचय दिया गया है। वेदांग परिचय, शिक्षा शास्त्र, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, कल्प, परिचय आदि की उपयोगिता से अवबोधन कराया गया है।

1) वेदांग परिचय

वेद भारतीय साहित्य एवं संस्कृति के मूल उद्गम स्थान हैं। वेद के स्वरूप एवं अर्थज्ञान के लिए प्रथम आवश्यक तत्त्व है शिक्षा, जो वेदमन्त्रों के यथार्थ उच्चारण की शिक्षा देता है। इसी प्रकार कर्मकाण्ड एवं यज्ञीय अनुष्ठान के लिए कल्प, शब्दरूप ज्ञान के लिए व्याकरण, पदों के निर्वचन के लिए निरुक्त, छन्दों के ज्ञान के लिए छन्द तथा अनुष्ठानों के लिए उचित नक्षत्र तिथि, मासादि के ज्ञान के लिए ज्योतिषशास्त्र अङ्ग हैं। अतः ये सभी वेदाङ्ग नाम से अभिहित किये जाते हैं। पाणिनीय शिक्षा में वेद को प्रथम पुरुष के रूप में कल्पित करके उसके छः अवयवों का निर्देश किया गया है –

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽय पद्यते।

ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।

शिक्षा प्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।

तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते।¹

1) शिक्षा शास्त्र—

शिक्षा को वेद का घ्राण कहा गया है (शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य)। शिक्षा का अर्थ है शिक्षण अर्थात् उच्चारण की शिक्षा देना। ऋग्वेदभाष्य में सायण ने कहा कि स्वर, वर्ण आदि की उच्चारण-विधियों की जहाँ पर शिक्षा दी जाती है उसे शिक्षा कहते हैं।² तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा गया है कि शिक्षा के छः अङ्ग हैं — वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम और सन्तान।

वर्ण

वर्ण — अकार (अ) आदि अक्षरों को वर्ण कहते हैं (वर्णोऽकारादिः)। शिक्षाग्रन्थों में या वर्णों का उल्लेख है³ जिनमें इक्कीस स्वर, पच्चीस स्पर्शसंज्ञक वर्ण, आठ यानि (य र ल व श ष स ह) चार यम, अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय, ऊपध्मानीय और दो स्वरों के मध्यवर्ती 'ल' ये तिरसठ वर्ण हैं यदि इनमें प्लुत लृकार को सम्मिलित कर लिया जाय तो संख्या चौसठ हो जाती है।

स्वर

यहाँ पर स्वरों से तात्पर्य उदात्त, अनुदात्त और स्वरित से है (उदात्तादिः स्वरः)। वेदमन्त्रों के उच्चारण में इन उदात्तादि स्वरों का विशेष महत्व है। क्योंकि वेदों में स्वरभेद से अर्थभेद भी हो जाया करता है।

मात्रा

स्वरों के उच्चारण में लगने वाले समय को मात्रा कहते हैं। मात्राएँ तीन होती हैं — उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। एक मात्रा के उच्चारण में लगने वाला समय ह्रस्व, द्विमात्रा और त्रिमात्रा को प्लुत कहते हैं (मात्रा ह्रस्वः। द्व दीर्घः। तिस्रः प्लुत उच्यते स्वरः)।

बल

वर्णों के उच्चारण स्थान और प्रयत्न को 'बल' कहते हैं। वर्णों के उच्चारण के समय वायु जिन स्थानों से टकराता हुआ बाहर निकला है उसे 'स्थान' कहते हैं। स्थान आठ होते हैं — कण्ठ, उरस्, तालु, मूर्धा, दन्त, ओष्ठ, नासिका और जिह्वामूल। वर्णों के उच्चारण में किये गये प्रयास को 'प्रयत्न' कहते हैं। प्रयत्न दो प्रकार का होता है — आभ्यन्तर और बाह्य। वर्णों के उच्चारण के लिए मुख के भीतर जो प्रयत्न किया जाता है उसे आभ्यन्तर प्रयत्न कहते हैं। आभ्यन्तर प्रयत्न चार प्रकार का होता है — स्पृष्ट, ईशत्स्पृष्ट, विवृत ओर संवृत। वर्णों के उच्चारण में मुख के बाहर जो प्रयत्न होता है उसे 'बाह्य' प्रयत्न कहते हैं। बाह्य प्रयत्न को अनुप्रदान भी कहते हैं, बाह्यप्रयत्न ग्यारह प्रकार का होता है — विचार, संवार, श्वास, नाद, घोष, अघोष, अल्पप्राण, महाप्राण, उदात्त, अनुदात्त और स्वरित।

साम —

वर्णों के दोष-रहित एवं शुद्ध माधुर्यादि गुणों से समन्वित उच्चारण को 'साम' कहते हैं। शिक्षाग्रन्थों में वर्णों के उच्चारण के गुण एवं दोषों का वैज्ञानिक विवेचन

² स्वरवर्णाद्युच्चारणप्रकारो यत्र शिक्ष्यते उपदिश्यते सा शिक्षा'' (ऋग्वेदभाष्यभूमिका — सायण पृ.)

³ तैत्तिरीयोपनिषद् — शिक्षाध्याय

मिलता है। पाणिनीय शिक्षा में पाठक के छः गुण बताये गये हैं।⁴ इसके अतिरिक्त पाणिनीय शिक्षा में छः प्रकार के अधम पाठकों का भी निर्देश है।⁵

पाठकों के कुछ और दोष बताये गये हैं।

सन्तान —

सन्तान का अर्थ है 'संहिता'। पदों की अतिशय सन्निधि को संहिता कहते हैं। प्रत्येक वेद के वर्णों का उच्चारण एक सा न होकर भिन्न भिन्न प्रकार से होता है। इसका विस्तृत विवेचन शिक्षा ग्रन्थों में प्राप्त होता है। यही कारण है कि प्रत्येक वेद के अलग-अलग शिक्षा ग्रन्थ हैं। इसी प्रकार प्रत्येक वेद के मन्त्र पाठ में संहिता या सन्धि विच्छेद आवश्यक बताया गया है। यास्क ने संहिता का अर्थ पदप्रकृति किया है (पदप्रकृति: संहिता)। प्रातिशाख्यों में 'काल-व्यवधान किये बिना पदों के मेल (सन्निधान) को संहिता कहा गया है। संहितापाठ में पदों का ज्ञान होना आवश्यक है और सन्धि नियमों के द्वारा ही संहिता-पाठ का सम्पादन होता है। अतः सन्धि-नियमों का ज्ञान संहिता पाठ में आवश्यक है।

प्रातिशाख्यों में उच्चारण, स्वरविधान, सन्धि विधान, ह्रस्व दीर्घविधान, लोपागमविकारादि विधान आदि संहिता पाठ से सम्बन्ध रखने वाले विषयों का विवेचन किया गया है। संहिता पाठ, पदपाठ के रूप में परिवर्तित होने के नियमों का विवरण भी इनमें प्राप्त होता है। इनमें दीर्घीकरण के समस्त उदाहरण समीक्षा के साथ प्रस्तुत किये गये हैं। कुछ प्रातिशाख्य ग्रन्थों में वैदिक छन्दों का विवेचन भी किया गया है। प्रातिशाख्यों की संख्या के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद पाया जाता है। प्रातिशाख्य शब्द से ज्ञात होता है कि प्रत्येक वेद की हर एक शाखा का एक प्रातिशाख्य ग्रन्थ रहा होगा, किन्तु आजकल उतने प्रातिशाख्य ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं, जितनी शाखाएँ उपलब्ध हैं। इस समय निम्नलिखित प्रातिशाख्य ग्रन्थ उपलब्ध हैं —

1. ऋक् प्रातिशाख्य
2. तैत्तिरीय प्रातिशाख्य
3. वाजसनेयि प्रातिशाख्य
4. अथर्ववेद प्रातिशाख्य (अथर्वप्रातिशाख्य और शौनकीय चतुराध्यायी)
5. सामप्रातिशाख्य (सामतन्त्र, पुष्पसूत्र और ऋक्तन्त्र)

2) व्याकरण

वैदिक वाङ्मय में व्याकरण का प्रमुख स्थान है। वेद के षडङ्गों में व्याकरण को मुख कहा गया है। (मुखं व्याकरण स्मृतम्)। जिस प्रकार शरीर के अवयवों में मुख अग्रणीय है और मुख के बना भोजनादि न होने से शरीर की पुष्टि नहीं हो सकती, उसी प्रकार व्याकरण के बिना वेद रूपी पुरुष के शरीर की रक्षा असम्भव है और वेद के छः अङ्गों में व्याकरण का मुख्य स्थान है। व्युत्पत्ति के आधार पर जिसके द्वारा पदों के प्रकृति प्रत्यय का विवेचन किया जाता है, उसे व्याकरण कहते हैं (व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्दा अनेनेति व्याकरणम्)। ऋग्वेद के एक मन्त्र में व्याकरणशास्त्र का एक वृषभ से रूपक बांधा गया है। इस वृषभ के नाम,

⁴ माधुर्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः।

धैर्यं लयसमथं च षडेते पाठकाः गुणाः॥ (पाणिनीय शिक्षा,)

⁵ गीती शीघ्री शिर कम्पी तथा लिखितपाठकः।

अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाः गुणाः॥ (पाणिनीय शिक्षा,)

आख्यात, उपसर्ग और निपात ये चार सींग हैं, भूत, भविष्य और वर्तमान ये तीनों काल इसके तीन पाद हैं, सुप् और तिङ् रूप इसके दो शिर हैं और सातों विभक्तियाँ इसके सात हाथ हैं। यह वृषभ उरस्, कण्ठ और शिर इन तीनों स्थानों में बँधा हुआ शब्द करता है। यह अहान् देव मनुष्यों के शरीर में प्रवेश किये हुए है —

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।

त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्या आविवोश । (ऋग्वेद)

पतञ्जलि ने महाभाष्य में अष्टाध्यायी की व्याख्या प्रारम्भ करने के पूर्व व्याकरण के अध्ययन के पाँच प्रयोजन बताये हैं — रक्षा, ऊह, आगम, लघु और असन्देह ।

‘रक्षोहागमलध्वसन्देहाः प्रयोजनम्’

रक्षा — व्याकरणशास्त्र का मुख्य उद्देश्य वेदों की रक्षा करना है। व्याकरण शास्त्र में वर्ण समाम्नाय, पद एवं स्वरों के उच्चारण के नियम एवं प्रयोग तथा पदपाठ, क्रमपाठ आदि की कल्पना वेदों की रक्षा के लिए ही की गयी है। इस प्रकार वेदों की रक्षा व्याकरणशास्त्र का प्रथम प्रयोजन है। महर्षि पतञ्जलि ने कहा है —

रक्षार्थं वेदानामध्येयं व्याकरणम् । लोपागमवर्णविकारज्ञो हि सम्यग् वेदान् परिपालयिषीति ।⁶

वेदों की रक्षा के लिए व्याकरण का अध्ययन करना चाहिए। लोप, आगम और वर्णविकार को अच्छी तरह जानने वाला ही वेदों की शुद्ध रूप से रक्षा कर सकता है। कैयट ने तो अर्थज्ञान को भी व्याकरण का प्रयोजन बताया है।

उह — उह का अर्थ है यथास्थान विभक्ति, लिङ्ग, वचन आदि का परिवर्तन अथवा रूपान्तरण। वेद में सभी विभक्तियों एवं सभी लिङ्गों में मन्त्र नहीं कहे गये हैं किन्तु याज्ञिक पुरुष को यज्ञ की आवश्यकता के अनुसार यथावसर उनका विपरिणाम कर लेना चाहिए। यह कार्य वैयाकरण ही कर सकता है इसलिए व्याकरण का अध्ययन करना आवश्यक है।

आगम — व्याकरण का तृतीय आयोजन आगम है। आगम का अर्थ है वेद या श्रुति। श्रुति कहती है कि ब्राह्मण को फल विशेष की कामना से रहित होकर षड्ङ्गों के साथ वेद का अध्ययन करना चाहिए। वेद के छः अङ्गों में व्याकरण प्रमुख है और मुख्य रूप में क्रिया से किया गया प्रयत्न सफल होता है अतः व्याकरण का अध्ययन करना आवश्यक है।

लघु — व्याकरण का चतुर्थ प्रयोजन लघु है। लाघव के लिए ही व्याकरण शास्त्र का अध्ययन करना चाहिए (लध्वर्थ चाध्येयं व्याकरणम्)⁷। व्याकरण ही वह लघु उपाय है जिसके द्वारा शब्दों का सरलता से थोड़े ही समय में ज्ञान हो जाता है। व्याकरण के अध्ययन किये बिना अन्य उपाय से शब्दों का ज्ञान नहीं हो सकता, अतः व्याकरण का अध्ययन करना चाहिए।

असन्देह — ‘असन्देह’ व्याकरणशास्त्र का पाँचवाँ प्रयोजन है। वैदिक शब्दों के सम्बन्ध में उत्पन्न सन्देह का निराकरण व्याकरण के द्वारा ही हो सकता है। वेदों में ऐसे अनेक शब्द मिलते हैं जिनमें अनेक प्रकार के समासों की सम्भावना रहती है।

⁶ महाभाष्य, पशुपशाह्निक

⁷ महाभाष्य, पशुपशाह्निक

3) निरुक्त

वेद के छः अङ्गों में निरुक्त का महत्वपूर्ण स्थान है। निरुक्त निघण्टु की टीका है। निघण्टु में वेद के कठिन शब्दों का क्रमबद्ध रूप में संकलन है। यास्क ने निघण्टु पर निरुक्त नामक भाष्य लिखा है। कुछ विद्वानों का विचार है कि निघण्टु और निरुक्त दोनों का रचयिता यास्क है किन्तु महाभारत में कश्यप को निघण्टु का रचयिता बताया गया है।⁸ निरुक्त के प्रारम्भ में निघण्टु को साम्नाय कहा है। कहा जाता है कि कृतधर्मा ऋषियों ने बिखरे हुए मन्त्रों को एकत्र कर निघण्टु नामक ग्रन्थ बनाकर अध्ययन-अध्यापक द्वारा इसका विस्तार पहले ब्राह्मण ग्रन्थों में समाम्नात किया गया, किन्तु जब ब्राह्मण ग्रन्थ भी वेदार्थज्ञान में पर्याप्त न हुए, तब निरुक्तादि ग्रन्थों में उन्हें समाम्नात किया गया। निघण्टु में पाँच अध्याय हैं। प्रथम तीन अध्याय को 'नैघण्टुक काण्ड' कहते हैं।

यास्क – निरुक्त के रचयिता यास्क हैं। कहा जाता है कि उद्दालक आरुणि एक प्रसिद्ध विद्वान् था। उसने अश्वपति से तत्त्वज्ञान की शिक्षा ग्रहण की थी। उसका पुत्र श्वेतकेतु था। श्वेतकेतु की वंश परम्परा में महान् वैयाकरण शाकपूर्णि हुआ। शाकपूर्णि का उल्लेख यास्क ने निरुक्त में किया है। शाकपूर्णि के वंश में आसुरि नामक एक विद्वान् हुआ, जिसका शिष्य पञ्चशिख था। यह पञ्चशिख सांख्यदर्शन का महान् आचार्य था।

निरुक्त एक प्रकार से निघण्टु का भाष्य है और निघण्टु वैदिक शब्दकोश के नाम से प्रसिद्ध है। सायण ने ऋग्वेदभाष्य के उपोद्घात में निघण्टु को भी निरुक्त कहा है किन्तु निरुक्त निघण्टु से अलग है। निरुक्त एक वेदाङ्ग है और निघण्टु का व्याख्या ग्रन्थ। निघण्टु में वैदिक शब्दों का संग्रह है और निरुक्त में उनकी व्याख्या। निघण्टु वैदिक शब्दकोष है और निरुक्त भाष्य। वेद का अर्थ समझने के लिए निरुक्त सर्वाधिक सहायक ग्रन्थ है और निरुक्त को समझने के लिए व्याकरण का ज्ञान आवश्यक है। जिसे व्याकरणशास्त्र का ज्ञान नहीं है वह निरुक्त का ज्ञाता नहीं हो सकता। इसलिए यास्क ने स्वयं कहा है कि अवैयाकरण के लिए निरुक्त नहीं है (नावैयाकरणाय)। इस प्रकार निरुक्त वेदों के कठिन शब्दों की व्याख्या करने वाला शास्त्र है। यास्क ने तो इसे व्याकरण का पूरक माना है (तदिदं विद्यास्थानं व्याकरणस्य कात्सन्त्यम) निरुक्त के प्रतिपाद्य विषय है –

वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौ चापरो वर्णविकारनाशो।

धातोस्तदर्थान्तिशयेन योगस्तदुच्यते पञ्चविधं निरुक्तम्॥

वर्णागम, वर्णविपर्यय, वर्ण विकार, वर्णनाश और धात्वर्थ का अतिशय योग ये निरुक्त के प्रतिपाद्य विषय हैं। ये ही पाँच विषय व्याकरण में भी हैं किन्तु निरुक्त व्याकरण का ग्रन्थ नहीं है बल्कि व्याकरणशास्त्र का पूरक कहा जाता है। निरुक्त वैदिक शब्दों का निर्वचन करता है। शब्दों का निर्वचन ही इसका प्रधान विषय है। यास्क के अनुसार सभी शब्द किसी न किसी धातु से बने हैं अतः सभी शब्द धातुज हैं। वैयाकरण शाकटायन का भी यही मत है कि सभी प्रतिपादिक शब्द धातुज हैं। इस प्रकार भाषा का मूल धातु है इस सिद्धान्त का प्रतिपादन यास्क ने किया है, जो भाषाशास्त्र की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

⁸ वृषों ही भगवान् धर्मः ख्यातो लोकेषु भारत।

निघण्टुपदाख्याने विद्धि मां वृषमृत्तमम्॥

कपिर्दगहः श्रेष्ठश्च धर्मश्च वृष उच्यते।

तसमाद् वृषाकपि प्राह कश्यपो मा प्रजापति॥ (महाभारत मोक्षधर्मपर्व)

निरुक्त तीन काण्डों में विभक्त है। इसमें बारह अध्याय हैं और अन्त में दो अध्याय परिशिष्ट के रूप में जोड़े गये हैं। इस प्रकार निरुक्त में कुल चौदह अध्याय हैं। निरुक्त के प्रथम काण्ड को नैघण्टुक काण्ड कहते हैं। इस काण्ड में तीन अध्याय हैं।

द्वितीय काण्ड को नैगमकाण्ड कहते हैं। इसे एकपदिक भी कहते हैं। नैगम काण्ड में एकपदादि और अनवगत संस्कार पदों का वर्णन किया गया है। जैसे पिता शब्द अनवगत संस्कार है। इसका अर्थ है पाता, पालयिता (धौर्म पिता)। इस प्रकार इस काण्ड में एकार्थ में अनेक शब्द और अनेकार्थ में एक शब्द तथा अनवगत संस्कार शब्दों का निर्देश किया गया है। जैसे पृथ्वी अर्थ में गौ आदि अनेक शब्द आये हैं और पृथ्वी, रश्मि, इन्द्रिय, गौ आदि अनेक अर्थों में गो शब्द का प्रयोग है। इसी प्रकार 'वक' शब्द भी अनवगत और अनेकार्थक है। वृक का अर्थ चन्द्रमा भी है और सूर्य को भी वृक कहा गया है।

निरुक्त के तृतीय काण्ड को 'दैवतकाण्ड' कहते हैं। देवतकाण्ड में देवताओं की प्रधानतया स्तुति की गयी है (तद् यानि नामानि प्राधान्यस्तुतीनां देवतानां तद् दैवतम्)। देवता की स्तुति चार प्रकार से होती है — नाम, रूप, कर्म और बन्धु। स्तुति के मन्त्र तीन प्रकार के हैं — परोक्षकृत, प्रत्यक्षकृत और आध्यात्मिक। यास्क ने निरुक्त में तीन प्रकार के देवता बताये हैं — पृथ्वी स्थानीय अग्नि, अन्तरिक्ष स्थानीय इन्द्र या वायु और द्युस्थानीय देवता आदित्य (तिस्त्र एव देवता इति नैरुक्ताः। अग्निः पृथ्वीस्थानो वायुर्वेन्द्रोवान्त-रिक्षस्थानः सूर्यो द्युस्थानः)। इसके अतिरिक्त परिशिष्ट में अग्निस्तुति तथा जिनके निर्वचन में प्रकृति प्रत्यय के योग का ज्ञान नहीं हो सकता, ऐसे मन्त्र निर्दिष्ट हैं। अन्त में ब्रह्म की स्तुति है। ब्रह्मनिष्ठ होकर कर्म करना श्रेयस्कर है। उससे मोक्ष की प्राप्ति होती है इस प्रकार निरुक्त में विविध प्रकार के शब्दों की व्युत्पत्ति बतायी गयी है और प्रत्येक नाम शब्द का सम्बन्ध किसी न किसी धातु से जोड़ा गया है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से इसका अलग महत्व है। यही कारण है कि यह ग्रन्थ अत्यन्त लोकप्रिय है।

4) छन्दः शास्त्र

वेद के छः अङ्गों में छन्द को वेद का पाद कहा गया है (छन्दः पादौ तु वेदस्य)⁹। अर्थात् वेद में छन्दः शास्त्र का वही स्थान है जो शरीर में पैरों का। जिस प्रकार पैर के बिना मनुष्य चलने में असमर्थ होता है उसी प्रकार छन्दोज्ञान के बिना वेद पंगु हैं। भाव यह है कि छन्दों के सम्यक् ज्ञान के बिना वैदिक मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण नहीं हो सकता। यास्क ने छन्दः शब्द की व्युत्पत्ति छद् (छदि) धातु से बतायी है जिसका अर्थ होता है आच्छादित करना। आच्छादित करने के कारण ही इसे छन्द कहते हैं (छन्दासि छादनात्)।

कात्यायन ने सर्वानुक्रमणी में छन्द का लक्षण किया है जो अक्षरों का परिमाण (संख्या) है वह छन्द है (यदक्षरपरिमाणं तच्छन्दः)। अथर्ववेद की बृहत्सर्वानुक्रमणी में अक्षर संख्या के अवच्छेदक को छन्दः कहा है (छन्दोऽक्षर-संख्याबच्छेदकमुच्यते)। इसी प्रकार वैदिक छन्दों में लौकिक छन्दों की तरह पाद संख्या भी नियत नहीं है। छन्दः शास्त्र में निश्चित अक्षरों के समूह को 'पाद' कहते हैं। वैदिक छन्दों में पाद संख्या नियत नहीं है। कुछ छन्द एक पाद के होते हैं, कुछ दो पाद और कुछ तीन पाद के होते हैं, कुछ छन्दों में चार पाद

⁹ पाणिनीय शिक्षा

होते हैं। वेद में कुछ छन्द ऐसे हैं जो केवल अक्षर संख्या पर आधारित हैं जहाँ पाद के लिए कोई भी स्थान नहीं है।

5) ज्योतिष

वेद के छः अङ्गों में ज्योतिष का महत्त्वपूर्ण स्थान है। पाणिनि ने ज्योतिष को वेद पुरुष का नेत्र कहा है (ज्योतिषामयनं चक्षुः)। यज्ञों के विधान में विशिष्ट समय का ज्ञान अपेक्षित है और यज्ञ-याज्ञों के लिए उपयुक्त समय वर्ष, मास, ऋतु, तिथि, नक्षत्र, पक्ष, दिन, रात आदि का मान ज्योतिष के द्वारा ही संभव है। अतः उक्त नियमों के निर्वाह के लिए ज्योतिष का ज्ञान नितान्त आवश्यक है। वेदाङ्ग ज्योतिष में इसको वेद का सर्वोत्तम अङ्ग माना गया है।

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।

तद्वद् वेदाङ्गशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम्।¹⁰

‘वेदाङ्ग ज्योतिष’ भारतीय ज्योतिष शास्त्र का प्राचीनतम ग्रन्थ है। इसके रचयिता लगध नामक ऋषि थे।¹¹ इसके दो पाठ मिलते हैं एक ‘ऋग्वेद ज्योतिष— जिसमें छत्तीस श्लोक हैं और दूसरा यजुर्वेद ज्योतिष, जिसमें चौवालिस श्लोक मिलते हैं। दोनों ग्रन्थों के अधिकांश श्लोक मिलते जुलते हैं, पर उनके क्रम में अन्तर पलक्षित होता है। इस पर अनेक विद्वानों ने व्याख्याएं लिखी हैं किन्तु सभी व्याख्याकारों में मतैक्य नहीं है। इसका विषय इतना दुरुह है कि कोई विद्वान् ज्योतिषी ही इसे समझ सकता है।

वेदाङ्ग ज्योतिष के प्रथम आचार्य ब्रह्मा हैं। उन्होंने अपने पुत्र वसिष्ठ को ज्योतिष विधा सिखायी। विष्णु ने उस ज्ञान को सूर्य को सिखाया जो ‘सूर्य सिद्धान्त’ कहा जाता है। उसे सूर्य ने मय को पढ़ाया जो ‘वसिष्ठ सिद्धान्त’ के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

6) कल्पसूत्र

वैदिक वाङ्मय के विकास में कल्पसूत्रों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कल्पसूत्र शब्द ‘कल्प’ और ‘सूत्र’ इन दो शब्दों के योग से निष्पन्न हुआ है। ‘कल्प’ शब्द का अर्थ है — वेद-विहित कर्मों का क्रमपूर्वक कल्पना करने वाला शास्त्र (कल्पोवेदविहितानां कर्मणामनुपूर्वेण कल्पना-शास्त्रम्)। विवाह-उपनयनादि संस्कारों एवं यज्ञ यागादि विधियों को क्रमबद्ध रूप में वर्णन करने वाले सूत्र ग्रन्थों को ‘कल्प’ कहते हैं। ‘सूत्र’ शब्द का अर्थ है ‘संक्षेप’ अर्थात् जहाँ थोड़े शब्दों में विशेष अर्थों को कहा जाय उसे ‘सूत्र’ कहते हैं (अल्पाक्षरत्वे सति बह्वर्थबोधकत्वं सूत्रत्वम्)। इस प्रकार सूत्रों में किसी भी विषय को संक्षेप में कहा जाता है और इस तरह कल्प सूत्र का अर्थ होता है — यज्ञ यागादि के नियमों का संक्षेप में (सूत्र रूप में) कहना। कल्पसूत्र में सम्पूर्ण धार्मिक नियमों तथा यज्ञ विधान के नियमों का संक्षेप तथा व्यवस्थित रूप में प्रतिपादन हुआ है। कल्पसूत्रों के मुख्यतः चार प्रकार होते हैं — श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र और शुल्बसूत्र।

कल्पसूत्रों का रचनाकाल

भारतीय परम्परा के अनुसार सूत्र साहित्य की रचना उत्तर वैदिककाल में सबसे पीछे हुई है। मैक्समूलर ने प्राचीन भारतीय वाङ्मय के काल निर्धारण के सम्बन्ध

¹⁰ वेदाङ्ग ज्योतिष

¹¹ प्रणभ्य शिरसा कालमभिवाद्य सरस्वतीम्।

कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मनः।। (आर्चज्योतिष, 2)

में सर्वप्रथम प्रयास किया है। उनका कहना है कि प्राचीन भारतीय इतिहास में दो तिथियां मान्य हैं — सिकन्दर का आक्रमण और बौद्धधर्म का आविर्भाव। उनके अनुसार बौद्धधर्म के उदयकाल के पूर्व ही समस्त वैदिक वाङ्मय का निर्माण हो चुका था और सूत्र साहित्य बौद्धधर्म के उदयकाल के प्रारम्भिक चरण में निर्मित हुए हैं क्योंकि ब्राह्मण और श्रौतसूत्रों में वर्णित कर्मकाण्ड ही बुद्ध की आलोचना के विषय थे। बुद्ध का निर्वाण काल ई.पू. माना जाता है अतः कल्पसूत्रों की रचना — ई.पू. में हुई होगी।

सूत्रकाल के प्रमुख आचार्य शौनक हैं। शौनक के दो शिष्य थे — आश्वलायन और कात्यायन। षड्गुरुशिष्य के अनुसार शौनक के कुल में आश्वलायन, कात्यायन और पतञ्जलि हुए हैं।

सूत्र साहित्य

ब्राह्मणों और श्रौतसूत्रों के मध्य सम्बन्ध

यह सुनिश्चित है कि दोनों के मध्य घनष्टि सम्बन्ध है।¹² वस्तुतः श्रौतसूत्रों का मूलाधार ब्राह्मणोक्त विधि वाक्यों से ही सम्पन्न हुआ है। यद्यपि श्रौतसूत्रोक्त प्रत्येक विधि का मूल ब्राह्मणों में कठिनाई से ही खोजा जायेगा, तथापि सामान्यतः श्रौतसूत्र स्वशाखीय ब्राह्मण ग्रन्थ में विहित विधियों का उपयोग करते हैं। ब्राह्मणों की अपेक्षा श्रौतसूत्रों का कलेवर अधिक व्यवस्थित है। ब्राह्मणोक्त कृत्यों में ब्रह्मवादियों की वैचारिक भिन्नता बहुत बार ब्राह्मणों से श्रौतसूत्रों में भी आ गयी है। उदाहरण के लिए बौधायन श्रौतसूत्र के द्वैध प्रकरण (20.2) में बौधायन, शालाकि तथा मौद्गल्य के विचारों में भिन्नता का यही कारण है। ये मतभेद पहले से ही चले आ रहे थे।¹³

वेदाङ्ग साहित्य

श्रौतसूत्र कभी-कभी स्वशाखीय परम्परा की उपेक्षा करते हुए परशाखीय विधियों को स्वीकार कर लेते हैं अथवा परिवर्तित परिस्थितिक वश कर्मानुष्ठान में नवीन प्रयोगों का समावेश करते हुए दिखलाई देते हैं। उदाहरणार्थ तैत्तिरीय शाखीय सूत्रों ने मैत्रायणी, काठक तथा माध्यन्दिन शाखा के मन्त्रों तथा विधानों तक को अपना लिया है और अनेक सर्वथा नवीन विकल्प प्रस्तुत किये हैं। बहुत बार ब्राह्मणों में प्रतिपादित प्रायश्चित्तों का रूप पूर्णतया नई तरह श्रौतसूत्रों में दिखलाई देता है। ब्राह्मण ग्रन्थ में दर्शपूर्णमास इष्टि के अन्तर्गत वत्सापकरणार्थ पलाश की शाखा का विधान है किन्तु श्रौतसूत्रों में शमी की शाखा का वैकल्पिक विधान कर दिया गया है। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि ब्राह्मणोत्तर काल में अन्तरालकालिक कुछ नई विधियाँ कर्मकाण्ड में विकसित हो गई थी, जिन्हें श्रौतसूत्रों में स्थान देना आवश्यक था।

क्रम की दृष्टि से भी कभी कभी ब्राह्मणों और श्रौतसूत्रों में अन्तर दिखलाई देता है। श्रौतसूत्रकारों में से कुछ ने संहिता के क्रम का अवलम्बन किया है और कुछ ने ब्राह्मण-क्रम का। उदाहरण के लिए आश्वलायन श्रौतसूत्र में पहले दर्शपूर्णमास इष्टि का निरूपण किया गया है, जबकि ऐतरेय ब्राह्मण में पहले सोमयागों का प्रतिपादन हुआ है। इसका समाधान कतिपय विद्वानों ने यह कहकर किया है कि सोमयागान्तर्गत दीक्षणीयेष्टि भी अन्ततः एक इष्टि ही है और वह भी 'दर्शपूर्णमास' संज्ञक प्रकृतियंग से सम्बद्ध हो जाती है — 'दीक्षणीयेष्टिः

¹² वद जीम तमसंजपवद इमजूममद जीम ठतीउदें दक जीमैतंनजेंनजतें रू पद ज्वलव ठंदावएँ मतपमे । टवसण गगप्प्ए 1953ए चण50

¹³ जीमैततमल वितंनजेंनजतें ज्ञौम्भज ए ष्ठण च 16ए 1966

पौर्णमासान्तर्गताग्नीषोमीयपुरोडाशस्यैव विकृतिरिति पौर्णमासेष्टिरेव प्रथमं कर्त्तव्या ।' इसी प्रकार कात्यायन श्रौतसूत्र अधिकांशतः शतपथ ब्राह्मणोक्त यागक्रम का ही अनुगामी है बौधायन श्रौतसूत्र के नियमों को वह 'विभाषा' कहकर ही अपनाता है। कात्यायन ने ब्राह्मणोक्त विधान को 'उपदेश' की व्याख्या दी है। इस प्रकार श्रौतसूत्रकारों की दृष्टि में ब्राह्मण ग्रन्थों का वही गौरव है, जो व्याकरण के प्रक्रिया ग्रन्थकारों की दृष्टि में पाणिनि और पतञ्जलि का है।

श्रौत सूत्र

वैदिक संहिताओं में वर्णित यज्ञ यागादि विधानों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करने वाले सूत्रों को श्रौतसूत्र कहते हैं। इनमें ब्राह्मणों में प्रतिपादित कर्मकाण्ड से सम्बद्ध विधानों का सार सूत्ररूप में संकलित है। श्रौतसूत्रों में श्रुति प्रतिपादित महत्त्वपूर्ण चौदह यज्ञों का क्रमबद्ध वर्णन होता है। ये भारतीय यज्ञीय प्रणाली के विषय में प्रभूत सामग्री प्रस्तुत करते हैं। चौदह यज्ञों का क्रमबद्ध वर्णन प्राप्त होता है चौदह श्रौतयज्ञ हैं — सात हविर्यज्ञ और सात सोमयाग। अग्न्याधान, अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, आग्रहायण, चातुर्मास्य, निरुद्धपशुबन्ध और सौत्रामणि ये सात हविर्याग कहलाते हैं। अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और आप्तोर्याम के सात सोमयाग कहलाते हैं।

हविर्यागों में घृत, पायस, दधि, पुरोडाश आदि हविष्यात्रों की आहुतियाँ दी जाती हैं। हविर्यागों में अग्निहोत्र प्रमुख है। अग्निहोत्र में प्रातः तथा सायं त्रेता अग्नि में दो दो आहुतियाँ दी जाती हैं। दर्शपूर्ण अमावस्या और पूर्णिमा के बिना किया जाता है। चातुर्मास्य यज्ञ चार-चार महीने पर किया जाता है। इसमें चार पर्व होते हैं — वैश्वदेव, वरुणप्रधास, साकमेध और शुनासीरिय। आग्रहायण प्रतिवर्ष बसन्त और शरदऋतु में नये अन्न से किया जाता है। निरुद्धपशुबन्ध प्रतिवर्ष वर्षाऋतु में अथवा दक्षिणायन या उत्तरायण में संक्रान्ति के दिन किया जाता है। इसे पशुयाग भी कहते हैं। सौत्रामणी एक पशुयज्ञ है जो इन्द्र के निमित्त किया जाता है।

गृह्यसूत्र

गृह्यसूत्र गार्हस्थ्य जीवन से सम्बद्ध धार्मिक अनुष्ठानों, आचार-विचारों एवं गृह्य यज्ञों का विवेचन करते हैं। इनमें गर्भाधान से लेकर मृत्यु पर्यन्त और मृत्यु के बाद भी किये जाने वाले संस्कारों तथा अनुष्ठान विधियों का विवरण प्राप्त है। गृह्यसूत्रों में संस्कारों का वर्णन है किन्तु गौतम चालीस संस्कार ही मानते हैं। इनमें गर्भाधान से विवाह पर्यन्त अठारह संस्कार कायिक संस्कार कहलाते हैं शेष बाईस संस्कार यज्ञपरक हैं। इनमें सात पाकयज्ञ और पाँच दैनिक यज्ञ (पञ्चमहायज्ञ) भी सम्मिलित हैं। सात पाकयज्ञों में दर्शपूर्णमास यज्ञ, जो अमावस्या एवं पूर्णिमा के दिन किया जाता है।

पञ्च महायज्ञों के नाम हैं — ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ और नृयज्ञ। ब्रह्मयज्ञ को ऋषियज्ञ भी कहते हैं। नित्य वेदों का स्वाध्याय या मन्त्रपाठ करना ब्रह्मयज्ञ है। गार्हपत्य अग्नि में देवताओं के निमित्त नित्य किया जाने वाला हवन देवयज्ञ है। पितरों के निमित्त तर्पण एवं श्राद्ध आदि करना पितृयज्ञ है। वलिरूप में अन्न आदि का दान भूतयज्ञ है। स्मृतिकारों ने इसे बलिवैश्वदेव कहा है। अतिथियों की सेवा करना नृयज्ञ या अतिथियज्ञ है। गृहस्थ जीवन में इन पाँच यज्ञों का सर्वाधिक महत्व है।

इनके अतिरिक्त इनमें विविध प्रकार के जादू टोनों, रोगों एवं अपशुकनों का उपशमन, गृहनिर्माण, पशुपालन, कृषि विधान तथा आचार व्यवहारों का समुचित निरूपण हैं इनमें सत् आचरण और सद्गुणों पर ऋषियों ने विशेष जोर दिया है।

गौतम ने अन्त्येष्टि को संस्कार नहीं माना है। मरने के बाद मृतक के लिए जो कर्मकाण्ड किया जाता है, उसे अन्त्येष्टि कहते हैं।

सूत्र साहित्य अथवा
वेदांग परिचय

धर्मसूत्र

धर्मसूत्र सामाजिक जीवन के नियमों, रीति रिवाजों, धार्मिक क्रिया कलापों, आचार विचारों एवं राजाओं के कर्तव्यों का विवेचन करते हैं। भारतीय कानून के ये आदि ग्रंथ हैं। इनमें वर्णाश्रमधर्म, चारों वर्णों के आचार एवं कर्तव्य, प्रजा के साथ राजा का व्यवहार, प्रायश्चित्त विधान, व्यवहार निरूपण आदि विषयों का विस्तृत विवेचन है। राज्य व्यवस्था, कर विधान, दाय भाग, स्त्रीधन, उत्तराधिकार, दण्ड व्यवस्था आदि धर्मसूत्रों के मुख्य विषय हैं। धर्मसूत्रों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि धर्म का विवेचन ही धर्मसूत्रों का मुख्य विवेचन है। इनके अतिरिक्त द्विजातियों के खान पान की व्यवस्था, आत्मा का स्वरूप, पुनर्जन्म के सिद्धान्त का विवेचन भी धर्मसूत्रों में प्राप्त होता है। लौकिक आचार एवं व्यवहार की सामग्री इसमें पर्याप्त मात्रा में है।

शुल्बसूत्र

शुल्बसूत्र कल्पसूत्र का प्रमुख अङ्ग है। शुल्ब का अर्थ है — 'मापने की रस्सी'। शुल्ब सूत्र में रस्सी के द्वारा मापी गयी वेदी की रचना की जाती है अर्थात् शुल्ब सूत्रों में रस्सियों से नापकर यज्ञस्थान और वेदियों की निर्माण विधि का विशिष्ट रूप से प्रतिपादन किया गया है। यह भारतीय रेखागणित का सबसे प्राचीनतम ग्रन्थ माना जाता है। भारतीय रेखागणित का प्राचीन इतिहास जानने के लिए शुल्बसूत्रों का अध्ययन आवश्यक है।

कात्यायन शुल्बसूत्र शुक्लयजुर्वेद से सम्बद्ध शुल्बसूत्र है। इसके दो भाग हैं प्रथम भाग में सात कण्डिकाएं और नब्बे सूत्र हैं। इसमें वेदियों के निर्माण के लिए रेखागणित, वेदियों के स्थान तथा उनके परिणाम का पूर्ण वर्णन प्राप्त होता है।

बौधायन शुल्बसूत्र सबसे बड़ा और प्राचीन ग्रन्थ है। इसके तीन परिच्छेद हैं इसके प्रथम परिच्छेद में मङ्गलाचरण के अनन्तर शुल्ब में प्रयुक्त विविध मानों, यज्ञवेदियों के निर्माण के लिए रेखागणित सम्बन्धी तथ्य एवं वेदियों के स्थान एवं आकार प्रकार का वर्णन है। इनमें वेदियों के निर्माण के नियम, एवं गार्हपत्य चिति का विवरण है।

आपस्तम्ब शुल्बसूत्र आपस्तम्ब कल्पसूत्र का तीसरा अध्याय है। इसमें छः पटल, इक्कीस अध्याय और 323 सूत्र हैं। प्रथम पटल में वेदियों की रचना के रेखागणितीय सिद्धान्त, द्वितीय पटल में वेदी के क्रमिक स्थान तथा उनके रूपों का वर्णन है। अन्तिम चार पटलों में काम्य इष्टि के लिए उनके आकार प्रकार वर्णित हैं। इसके कपर्दिस्वामी, सुन्दरराज, गोपाल और करबिन्दस्वामी ये चार टीकाकार हैं।

5.8 सारांश

वेद शास्त्रों का प्रयोजन जानने तथा शब्दों का यथार्थ ज्ञान हो सके इस हेतु अतः वेदांग का अध्ययन होना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में पाणिनीय व्याकरण ही वेदांग का प्रतिनिधित्व करता है। व्याकरण वेदों का मुख भी कहा जाता है। वेद यज्ञकर्म में प्रवृत्त होते हैं और यज्ञ काल के आश्रित होते हैं। तथा ज्योतिष शास्त्र से काल का ज्ञान होता है। अतः इस इकाई के माध्यम से अध्येताओं को वेद शास्त्रों को जानने और भली भांति समझने में सहायक होंगे।

बोध प्रश्न —

1. अधोलिखित प्रश्नों के सही उत्तरों पर सही का चिह्न लगाये

1. वर्णों के उच्चारण से सम्बन्धित विशेषताओं का वर्णन कहाँ प्राप्त होता है?

शिक्षा / कल्प

2. वेदपुरुष के हाथ किसे कहा जाता है?

कल्प / छन्द

3. व्याकरण को वेदपुरुष के किस अंग से अभिलक्षित किया जाता है?

मुख / श्रोत

4. निघण्टु में कुल कितने अध्याय हैं? 5/6

5. वेद पुरुष के पैर किसे माना गया है?

छन्द / निरुक्त

2. वेदांगों के नाम बताइए।

3. निरुक्त की विवेचना किजिए।

अभ्यास प्रश्न 2

1. उच्चैरुदात्तः, नीचैरनुदात्तः।

2. इदं व्याख्यानं श्रौतम्।

3. यानि सन्ति तान्येव स्मार्तकर्मणि।

4. कल्पोथ कथ्यते।

अभ्यास प्रश्न 3

1. कल्पसूत्र के कितने भेद हैं? विस्तृत रूप से वर्णन करें।

2. वेदांगों का परिचय देते हुए, व्याकरण का प्रतिपाद्य विषय लिखें।

1. उत्तर — 1. शिक्षा 2. कल्प 3. मुख 4. पाँच 5. छन्द

अभ्यास उत्तर 2

1. समाहारस्वरितः 2. श्रुतेः 3. गृह्यसूत्राणि 4. हस्तौ।